कल्याण



[वर्ष ४२] * * * [अङ्क ११

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,६०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२६, नवम्बर १९६९

चित्र-सूची

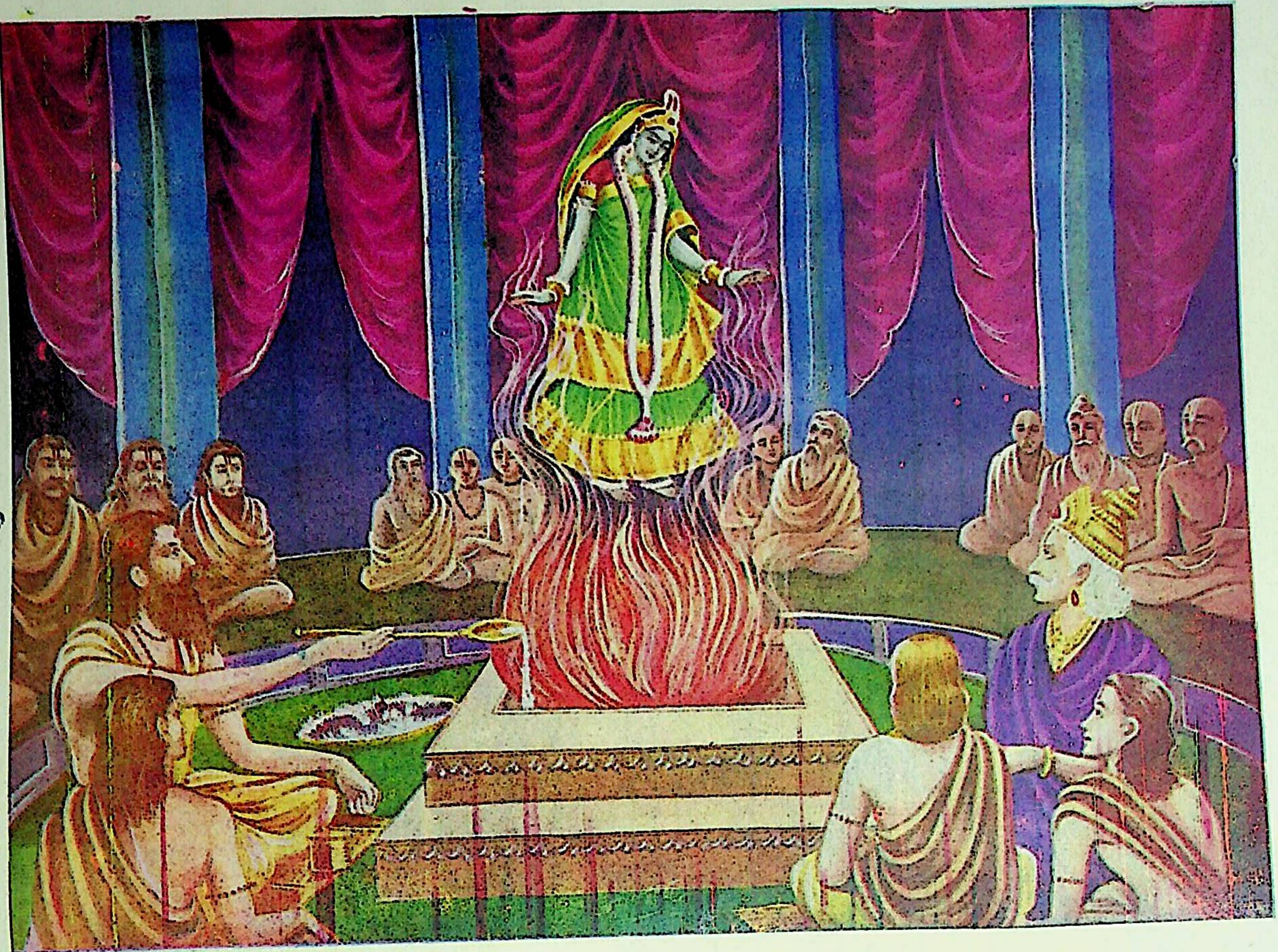
वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.२५ (१५ शिलिंग) }

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

{ साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर



द्रौपदीकी उत्पत्ति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ } गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०२६, नवम्बर १९६९ { संख्या ११
पूर्ण संख्या ५१६

द्रौपदीकी यज्ञसे उत्पत्ति

विप्र याजके द्वारा सुरसरि-तटपर हुआ यज्ञ सम्पन्न ।
द्रुपद नृपतिका, उसी यज्ञसे हुए बहन-भाई उत्पन्न ॥
दिव्य रूप, गुण, धनुष, खड्ग, धन, कान्ति, कवच, कुण्डलसे युक्त ।
धृष्टद्युम्न सुकुमार, कुमारी रमणीरत्न शीलसंयुक्त ॥
शुचि सर्वाङ्गसुन्दरी अतुलित सर्वाभरणवती अभिराम ।
तनसे कमल-गन्ध फैलाती दूर-दूरतक मधुर ललाम ॥
कृष्णवर्ण मनहारी—कृष्णा, पाञ्चाली, द्रौपदी सुनाम ।
देख सभी पाञ्चाल याजको करने लगे सभक्ति प्रणाम ॥

याद रक्खो—नित्य तथा पूर्ण सुख एकमात्र भगवान् या ब्रह्ममें ही है। इसीलिये जबतक भगवद्दर्शन या ब्रह्मसे संस्पर्श नहीं हो जाता, तबतक नित्य पूर्ण सुख मिल ही नहीं सकता। सुख सभी चाहते हैं और सभी नित्य तथा पूर्ण सुख चाहते हैं, परंतु भूल यह होती है कि वह सुख खोजा जाता है —जागतिक विषयों, परिस्थितियों और वस्तुओंमें। जगत्‌में ऐसा कोई भी विषय, परिस्थिति और वस्तु नहीं है जो नित्य हो तथा पूर्ण हो।

याद रक्खो—विषय, परिस्थिति और वस्तुमें जो सुख देखा या पाया जाता है, वह वास्तवमें सुख है ही नहीं। सुख वह है जो नित्य हो, पूर्ण हो। इसीलिये भारतके ऋषि-मुनियोंने सुदीर्घ समाधि तथा ध्यानलब्ध दृष्टिसे सुखका अनुसंधान किया और उसे पाया एकमात्र नित्य सत्य सनातन पूर्ण भगवान्‌में या ब्रह्ममें। इसीसे उन्होंने एकमात्र भगवत्प्राप्ति या ब्रह्म-संस्पर्शको ही सुख माना और उसीकी प्राप्तिके लिये साधनोंकी शिक्षा दी; और इसीलिये भारतीय मानव-समाजने अपना लक्ष्य भोग न मानकर भगवान्‌को माना।

याद रक्खो—मिथ्या भ्रमवश मनुष्यको भोगोंमें— परिस्थिति और पदार्थोंमें सुखकी आस्था हो रही है और उन्हींकी प्राप्ति, रक्षा तथा उत्तरोत्तर वृद्धिमें वह अपना जीवन खो रहा है। कभी-कभी जो आंशिक तथा क्षणस्थायी सुख-सा दीखता है, उसीको बढ़ाना चाहता है, पर वह बढ़ता तो है ही नहीं, उसका दीखना भी बंद हो जाता है। तथापि मनुष्य भोगोंसे सुखकी आशा नहीं छोड़ता और नित्य नये प्रयास करनेमें नित्य नयी अशान्ति, क्षोभ, दुःख तथा पापकी उपलब्धि करता रहता है। यही उसका महामोह है।

याद रक्खो—एकमात्र भगवान् ही यथार्थ एवं नित्य सत्य सुखस्वरूप हैं—यह मानकर, इसपर विश्वास कर, जीवनको भोगोंसे हटाकर भगवान्‌की ओर मोड़ो। एकमात्र भगवान्‌के ही शरणापन्न होकर भगवान्‌में ही सुख देखो, उन्हींसे माँगो और उन्हींको माँगो। भगवान् देंगे, अवश्य देंगे। उनसे ही और उनमें ही हमें शाश्वत सुख मिलेगा।

याद रक्खो—भगवान्‌में विश्वास होनेपर दुःख नामकी वस्तुका ही अभाव हो जायगा। फिर तो प्रत्येक परिस्थितिमें उनके दर्शन तथा उनका संस्पर्श प्राप्त होता रहेगा। इससे वह अनन्त सुख मिलेगा, जो कभी मिटेगा नहीं, घटेगा नहीं, उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहेगा।

याद रक्खो—मोहग्रस्त मनुष्य ही भगवान्‌को छोड़कर भोगोंमें रचा-पचा रहता है, अपने सारे बुद्धि-बल, शरीरबल तथा मन-इन्द्रियोंको निरन्तर भोगोंकी प्राप्ति और उनके सेवनमें ही लगाये रखता है, इसीसे वह मानव-जीवनके एकमात्र परम लाभ भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित रहता है; इसीलिये वह जीवनभर नयी-नयी अनन्त चिन्ताओं, उद्वेगों तथा दुःखोंसे ग्रस्त, दिन-रात भयत्रस्त और दिन-रात शोक-विषादका अनुभव करता हुआ भोगरक्षण, भोगप्राप्ति तथा भोगवृद्धिके लिये नरकके द्वारस्वरूप काम-क्रोध-लोभका आश्रय लेकर नये-नये पापकर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। इस प्रकार दुर्लभ मानव-जीवनको व्यर्थ तथा अनर्थमय कार्योंमें लगाकर वह केवल नष्ट ही नहीं करता, बहुत बड़े-बड़े भावी संकटोंका निर्माण कर लेता है।

याद रक्खो—जीवनके मूल्यवान् क्षण बीते जा रहे हैं। अतएव शीघ्र विचार करो और भगवान्‌को ही जीवनका एकमात्र परम लक्ष्य बनाकर उनके सम्मुख हो जाओ। भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर सभी प्राप्त सामग्रियों तथा परिस्थितियोंको केवल उन्हींकी प्राप्तिके साधन बना दो तथा सावधानी और शीघ्रताके साथ उनकी ओर अग्रसर होते चले जाओ।

याद रक्खो—भगवान्‌की ओर अग्रसर होनेका

अभिप्राय है—मनका उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक भगवान्‌के स्मरणमें लगना। फिर भगवान्‌को कहींसे आना नहीं पड़ता, वे सदा सर्वत्र वर्तमान हैं; जब किसीको अपने लिये अनन्य साधनपरायण तथा परम आतुर देखते हैं, तभी उसे दर्शन तथा अपना मङ्गलमय संस्पर्श प्रदान कर कृतार्थ कर देते हैं।

'शिव'

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

(एक पुराना अप्रकाशित पत्र)

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिला। आपने अपना परिचय देते हुए अपने जीवनकी घटनाओंका उल्लेख किया, वे सब बातें मालूम हुईं। जो बात बीत चुकी है, उसका तो अब कोई उपाय नहीं है। उसके लिये सच्चा पश्चात्ताप तो यही है कि वैसी गलती पुनः न की जाय। नहीं तो, पश्चात्ताप कथनमात्रका है, अपने-आपको ही धोखा देना है। जिस गलतीके लिये वास्तविक दुःख होता है, वह पुनः नहीं होती। यह प्राकृतिक नियम है।

आपने बीड़ी, सिगरेट, भाँग, ठंडाई और सिनेमा देखने आदि कुव्यसनोंका त्याग करनेकी शपथ ले ली, यह बहुत अच्छा किया। अब इस प्रतिज्ञाका दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिये।

भगवान्‌का भजन-स्मरण और गीता-रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन यदि श्रद्धापूर्वक किया जाय तो कामनाका नाश अवश्य होना चाहिये। आप साधन करते हैं, परंतु उसका विशेष लाभ देखनेमें नहीं आता, इसका कारण प्रेम और विश्वास-श्रद्धाकी कमी ही समझना चाहिये।

अबतक आपने विवाह नहीं करवाया, यह बड़ी भारी भूल की। अब यदि आप दुर्व्यसनके कारण रोगग्रस्त न हो गये हों तो जितना शीघ्र हो सके, आपको विवाह करवा लेना चाहिये। विवाह करके विधिपूर्वक नियमित समयपर अपनी धर्मपत्नीके साथ गृहस्थ-व्यवहार करना एक प्रकारसे कामके वेगको जीतनेका उपाय है। अमर्यादित ढंगसे शुक्र नष्ट करना तो महान् पाप है। अतः विवाह न करनेका आग्रह आपको छोड़ देना चाहिये तथा अमर्यादित शुक्रनाशको अपना सर्वनाश समझकर, दृढ़प्रतिज्ञ रहकर उसे अवश्य ही छोड़ देना चाहिये।

आपने भगवान् शंकरसे जो प्रतिज्ञा की थी, वह तो रही नहीं; ब्रह्मचर्य तो खण्डित हो ही गया; फिर विवाह करनेमें आप क्यों हिचकते हैं?

आप परीक्षामें द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए, इसमें दुःख और दुर्भाग्यकी कौन-सी बात है? इसके लिये इतना दुःख क्यों करना चाहिये? वैसे परीक्षामें धरा ही क्या है? योग्यता होनी चाहिये। कई लोग ऐसे देखे जाते हैं, जिन्होंने परीक्षा पास नहीं की, पर उनकी योग्यता परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेवालोंसे भी अच्छी है और वे अपनी योग्यताके कारण उनकी अपेक्षा अधिक लाभान्वित होते हैं। परीक्षामें उत्तीर्ण न होनेके कारण आत्महत्याका विचार करना तो महान् मूर्खता है; क्योंकि इस समय जो दुःख है, मरनेके समय उससे अधिक दुःख होता है और उससे भी अधिक परलोकमें होता है।

आपको काम नहीं मिल रहा है, इसमें तो कोई प्रारब्ध कारण हो सकता है। कहीं-न-कहीं अच्छा काम मिल सकता है, आप कोशिश करते रहें।

गीतामें भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते

हुए जो 'मन'को अपना स्वरूप बतलाया है, वह इसलिये बताया है कि सब इन्द्रियोंमें मन बलवान् है। बिना मनके कोई भी इन्द्रिय अपना काम नहीं कर सकती। वास्तवमें मन भला-बुरा करनेवाला नहीं है; वह तो यन्त्रकी भाँति है। हम उससे जो काम कराना चाहें, करा लें; यदि हम उसका साथ न दें तो मन कुछ भी नहीं कर सकता।

इसी प्रकार जहाँ भगवान्‌ने अपनेको 'काम' बताया है, वहाँ भी स्पष्ट कहा है कि 'धर्मसे अविरुद्ध जो काम है, वह मैं हूँ।' इससे भी यही सिद्ध होता है कि धर्म-विरुद्ध काम भगवान्‌की विभूति नहीं है, उसे तो प्राणी मोहवश स्वीकार करता है।

भगवान् किसीका बुरा नहीं करते। मनुष्य स्वयं ही भगवान्‌की अवहेलना करके अपना अहित करता है, इसीलिये उसको दोष दिया जाता है।

जैसे पिता अपने पुत्रको दुखी देखना नहीं चाहता, उसी प्रकार भगवान् भी किसी प्राणीको दुखी देखना नहीं चाहते। उसकी बुरी आदत छुड़ानेके लिये ही उसे माताकी भाँति स्नेहपूर्ण हृदयसे अपराधका दण्ड देते हैं।

संसारमें जो कामी, क्रोधी और अत्याचारी देखनेमें आ रहे हैं, वे सब भगवान्‌की आज्ञा और प्रेरणाको न मानकर उसकी अवहेलना करनेवाले हैं।

न तो गीता झूठी है और न श्रीकृष्ण ही। आप अपनी समझमें विश्वास और श्रद्धा रखते हैं, यह ठीक है। पर इतनी श्रद्धासे काम नहीं चलता। श्रद्धा सच्ची और पूर्ण होनी चाहिये।

भगवान्‌ने यह उचित ही कहा है कि 'मेरे भक्तको माया नहीं सता सकती।' भगवान्‌के भक्तपर भला त्रिगुणमयी मायाका बल कैसे चल सकता है? क्योंकि उसे तो भगवान्‌का असीम बल प्राप्त हो जाता है अतः आप भगवान्‌के भक्त बनिये; मायाके कार्यरूप विषयोंके दास मत रहिये। उसके बाद देखिये, माया आपका क्या बिगाड़ती है?

आपके अन्य प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) हनुमान्‌जीने सीताजीको 'प्रिया' कहीं भी नहीं कहा है। उन्होंने तो बार-बार 'माता' कहकर ही सम्बोधन किया है। जो यह पद है कि—

"जानत प्रिया एकु मनु मोरा।"

—यह कथन श्रीरामचन्द्रजीका है, हनुमान्‌जीका नहीं। प्रसङ्गको समझकर पढ़ना चाहिये।

(२) सीता रावणको भस्म कर सकती थीं, पर वे अपने पातिव्रतधर्मके बलका प्रयोग करनेकी अपेक्षा कष्ट-सहन ही उत्तम धर्म समझती थीं। इसलिये उन्होंने अपने धर्मबलका प्रयोग नहीं किया।

(३) रावण सीताजीका हरण करते समय उन्हें बलपूर्वक उठाकर जबरदस्ती अपने रथमें बैठाकर ले गया था, सीता अपनी इच्छासे नहीं गयी थीं। पतिव्रता सीताके लिये इसमें कलङ्ककी क्या बात है? रावण अत्याचारी था, उसने अत्याचार किया। पर सीताने अपने धर्मका त्याग नहीं किया और उसको शाप भी नहीं दिया, स्वयं संकट सहन करती रहीं, इसमें तो सीताका महत्त्व ही है।

(४) राजा प्रतापभानुको आकाशवाणीने दोषी नहीं बताया; उसने तो केवल यही कहा है—

'बिप्र बृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुर माँसू।'

—बस, यह सुनकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए और राजापर क्रोध करके उसे शाप दे दिया। इसमें आकाशवाणीने कोई भूल नहीं की। भूल ब्राह्मणोंकी अवश्य हुई, पर उन्होंने भी समझ-बूझकर राजाको शाप नहीं दिया

था, आवेशमें आकर ही दे दिया था ! बादमें आकाश-वाणीने तो फिर ब्राह्मणोंको सावधान किया---

'बिप्रहु साप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा ॥'

प्रसङ्गोंको ठीकसे पढ़नेपर शङ्का नहीं होती ।

(५) भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र अनन्य इच्छा होनेपर तथा अन्य सब प्रकारकी इच्छाओंका सर्वथा नाश होनेपर भगवान् शीघ्र मिल सकते हैं । अन्तःकरण शुद्ध होनेपर श्रद्धा और विश्वास दृढ़ हो सकता है ।

(६) भगवान्‌का भक्त बननेके लिये उनपर यह विश्वास होना चाहिये कि 'भगवान् हैं और वे मेरे अपने हैं, मैं उनका हूँ; दूसरा कोई भी मेरा नहीं है।'—ऐसा यथार्थ तथा दृढ़ भाव होना ही भगवान्‌का भक्त बनना है। उस भक्तको त्रिगुणमयी माया कभी नहीं सता सकती ।

(७) गीतामें जिस मनको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बतलाया है, वही मन सबका मन (समष्टि मन) है । अतः आपका मन भी उसीका अंश है । उसे भगवान्‌के समर्पण कर देनेके बाद भी आपको यदि यह प्रतीति हो रही है कि वह मुझपर कुप्रभाव डालता है, मेरे पतनका कारण बनता है, तो इसका हेतु एकमात्र यही हो सकता है कि उसे आपने भगवान्‌को यथार्थमें समर्पण नहीं किया । अथवा करते-करते वापस लौटा लेते हैं और उसे अपना ही मानते रहते हैं । ऐसा नहीं करते तो बार-बार समर्पण करनेका ही मौका कैसे आता ?

(८) धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन और मनन करनेसे मनुष्यकी वासना शान्त होती है, पर होती है उनमें बतायी हुई बातोंको माननेसे । हम पाठ तो करें, पर उन बातोंको न मानें तो वह लाभ कैसे हो सकता है ? ग्रन्थ तो दीपककी भाँति उजियाला करते हैं; हमें बुराई और अच्छाईका भेद समझाते हैं; उसके बादका काम तो हमारा है ।

आप गंदा साहित्य नहीं पढ़ते, सिनेमा नहीं देखते, खटाई आदि नहीं खाते, यह तो बहुत अच्छी बात है । यदि ये सब करते तो न जाने आपकी क्या दशा होती । पर इन उपायोंको करते हुए भी जो कामवासना जाग्रत् होती है, उसके लिये आपको विवाह करा लेना चाहिये तथा भगवान्‌पर विश्वास करके उनसे प्रेम करना चाहिये । भगवान्‌के प्रेमका रस अन्य सब रसोंका नाश कर देता है ।

(९) गीताप्रेसमें रहनेसे किसीका मन शुद्ध हो जाय, ऐसी बात नहीं है । अतः आपको अपने घरपर ही रहकर साधन करते रहना चाहिये ।

(१०) आत्महत्या दुःखसे छुटकारा पानेका साधन नहीं है । ऐसा होता, तब तो हरेक दुःखी आदमीको यह उपाय बताया जाता और उसे दुःखसे बचा लिया जाता । पर आत्महत्या तो एक घोर पाप है । उसके परिणामस्वरूप मनुष्यको पहलेवाले कर्मोंके दुःखोंके सिवा और भी नये-नये दुःख भोगने पड़ते हैं; क्योंकि शरीरका नाश कर देनेसे आत्माका नाश नहीं होता; वह ज्यों-का-त्यों रहता है । उसके मन-बुद्धि भी उसके साथ ही रहते हैं । इसलिये वह जहाँ जाता है, वहीं उसे अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है ।

गोरक्षा संसारको हिंदू-धर्मका दिया हुआ प्रसाद है

×××हिंदुस्तानमें गायसे बढ़कर मनुष्योंका साथी दूसरा कोई नहीं । उसने बहुतेरी वस्तुएँ हमें दी हैं। उसने केवल हमें दूध ही नहीं दिया है, बल्कि हमारी खेतीका भी सारा आधार उसीपर है । गाय तो एक मूर्तिमती करुणामयी कविता है । इस नम्र प्राणीमें करुणा-ही-करुणा दिखायी देती है । भारतके लाखों मनुष्योंकी यह माता है । गोरक्षाका अर्थ है—ईश्वरकी सम्पूर्ण मूक-सृष्टिकी रक्षा । लेकिन प्राचीन कवियोंने फिर वे चाहे कोई हों, गायसे ही श्रीगणेश किया । सृष्टिकी नीची श्रेणीके प्राणियोंको वाक्शक्ति नहीं है, इसलिये उनकी अपीलमें सबसे अधिक बल है । गोरक्षा संसारको हिंदू-धर्मका दिया हुआ प्रसाद है और तबतक हिंदू-धर्म बराबर जीवित रहेगा, जबतक हिंदू लोग गो-रक्षा करनेके लिये मौजूद हैं ।

(नीति-धर्म-दर्शन ३७०) —महात्मा गांधी

पागलकी झोली

[माकी गोद]

(लेखक—महात्मा श्रीसीताराम ओंकारनाथजी महाराज)

पागल कुटियासे अभी 'राम, राम' करता हुआ बाहर निकला ही था कि इसी समय हरेकृष्णने आकर कहा—"अरे पागल बाबा ! तुम तो 'राम राम' करते हुए खूब आनन्दमें हो । किंतु मैं जो रोग, शोक एवं अभावकी ज्वालामें जला-मरा जा रहा हूँ—मैं क्या करूँ, बतलाओ न ?"

पागल—'राम राम' करो । समस्त ज्वाला शान्त हो जायगी ।

हरे—मुझे माका नाम प्रिय लगता है ।

पागल—उत्तम ! केवल 'मा, मा' करो; उठते-बैठते, खाते-सोते बस,—'मा, मा, मा' सीताराम ।

हरे—एक साधनाका मार्ग जानना चाहता हूँ । ये सब ज्वालाएँ—जिससे मुझे जला न सकें—यन्त्रणा न दे सकें, मन स्थिर हो जाय, क्या ऐसा कोई साधारण मार्ग है ?

पागल—है, सीताराम ।

हरे—संसारकी ज्वाला जिससे शान्त हो जाय, परलोकमें जिससे आनन्दमें रह सकूँ, उसका मार्ग मुझे बतला दो न, पागल बाबा !

पागल—रोज जप करनेके लिये आसनपर बैठते हो तो ?

हरे—बैठता हूँ ।

पागल—इस बार आसनपर बैठकर मनमें ऐसी भावना करो कि तुम माकी गोदमें बैठे हो; माने तुमको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर अपने वक्षःस्थलसे चिपका रक्खा है, सीताराम ।

हरे—इसके बाद ?

पागल—जप करो, 'मा मा' जप करो, मन भागने लगे तो बोलो—'मा मा' । मन किसी प्रकारकी दुश्चिन्ता लाकर उपस्थित करे, तो बोलो—मा मा । मनके अन्यमनस्क होते ही बोलो—मा, ओ मा, ओ मा । जिन मक्खन-से कोमल दोनों हाथोंसे माने तुमको अपनी छातीसे चिपका रक्खा है, उन्हीं हाथोंपर अपना हाथ फिराते हुए बोलो—मा मा मा ! सीताराम, सीताराम !

हरे—इससे क्या होगा ?

पागल—प्रत्युत्तर मिलेगा, सीताराम । मा प्रत्युत्तर देंगी ।

हरे—मा प्रत्युत्तर देंगी ?

पागल—निश्चय ही प्रत्युत्तर देंगी । केवल मेरी बातपर विश्वास करनेके लिये मैं तुम्हें नहीं कहता । तुम दो-चार दिन नित्य तीन बार बैठकर, कुछ क्षणोंतक इस प्रकार—'माकी गोदमें बैठा हूँ'—ऐसा चिन्तन करते हुए पुकारोगे तो अवश्य ही प्रत्युत्तर पाओगे, पाओगे, निश्चय ही पाओगे ।

हरे—उसके बाद !

पागल—उठते-बैठते, खाते-सोते, बोलो—'मा मा' । कामके प्रताड़न, क्रोधके उत्पीडनमें बोलो—'मा मा !' अभावकी ज्वालामें रो-रोकर पुकारो—मा मा मा । केवल पुकारते रहो—एक भी श्वास व्यर्थ न चला जाय । बोलो—मा ! मा !! मा !!! जप करो—मा ! मा !! मा !!! गाओ—मा ! मा !! मा !!! मा नामकी तोपसे वज्रसे भी अधिक दुर्भेद्य कामके किलेको उड़ा दो । अरे, मा मा मा—जो इसका जप करता है, काम क्या उसके पास फटकनेका भी साहस कर सकता है ? मा नामकी महान् बाढ़में दारिद्र्यकी अग्निको पूरीतौरसे बुझा डालो । अरे माके लाडले ! अरे अमृतके आदरके दुलारे!

मा नामके महामन्त्रका जप करते चलो, कोई चिन्ताकी बात नहीं है—सीताराम, सीताराम ।

हरे—पागल बाबा ! तुम्हारी बात सुनकर मेरे प्राण आनन्दसे भर उठे हैं । क्या मैं ऐसा कर सकूँगा ?

पागल—निश्चय ही कर सकोगे । तुम केवल जरा चेष्टा करो । उसके पश्चात् माकी श्रीकृपाका अनुभव करने लगोगे । माकी कृपा ही तुमसे सब कुछ करवाती हुई तुम्हें शान्त कर देगी ।

हरे—इस लोककी साधनाकी बात तो सुन ली, उस लोककी साधनाका क्या मार्ग है ? मरकर कहीं अन्धकारके राज्यमें जाकर न गिर पड़ूँगा ?

पागल—अरे, कैसा अन्धकार ? सीताराम ! वह तो प्रकाशका राज्य है । रोज तीन समय उसका ध्यान करना होगा, सीताराम ।

हरे—बताओ तो पागल बाबा ! किस प्रकार ध्यान करना होगा ।

पागल—माकी गोदमें बैठकर आँखें मूँदकर अपने हृदयमें भावना करना कि उस स्थानके भीतरसे अतिशय ज्योतिर्मयी सुषुम्णा नाडी सूर्यमण्डलतक चली गयी है । फिर ऐसी भावना करना—मानो तुम्हारा मृत्युकाल उपस्थित हो गया है; तुम भ्रूमध्यमें दृष्टि रखकर 'ॐ' का उच्चारण करते हुए ब्रह्मरन्ध्रके द्वारसे शरीरको छोड़कर बाहर निकल आये हो,—स्थूल देह वैसे ही पड़ा हुआ है । सूक्ष्म देह लेकर बाहर आनेपर दिवसाभिमानिनी देवता तुमको वहन करके शुक्ल पक्षकी अभिमानिनी देवताके पास ले गयी है, फिर वह तुमको वहन करके उत्तरायणके छः मासोंकी अभिमानिनी देवताके समीप लेकर चली गयी है, सीताराम ।

हरे—मैं इसे ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ ।

पागल—जो बातें कहता हूँ—इन सबका मनमें चिन्तन करना, सीताराम । इस प्रकार करते-करते अपने-आप ही सब समझ जाओगे । उत्तरायणाभिमानिनी देवताने संवत्सराभिमानिनी देवताके पास पहुँचा देनेपर—

हरे—उत्तरायण और संवत्सर क्या अलग-अलग हैं ?

पागल—संवत्सर है अवयवी और उत्तरायण तथा दक्षिणायन हैं अवयव । इस अवयवभूत उत्तरायणके छः मासोंकी अभिमानिनी देवताके पश्चात् अवयवी संवत्सरकी अभिमानिनी देवताको प्राप्त होकर, उसके पश्चात् सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युल्लोक आदिका अतिक्रमण कर, अग्रसर होनेपर तुम जिधरसे होकर जाते हो, वहाँ-वहाँकी देवमण्डली तुम्हारी पूजा कर रही है, देखते-देखते तुम प्रकृतिमण्डलके परे जाकर स्थित हो गये हो; सीताराम, सीताराम ।

हरे—मैं किस प्रकारसे जाऊँगा ? सूर्यलोकपर्यन्त तो सुषुम्णाके भीतरसे होकर आ गया; उसके पश्चात् ?

पागल—**'सुषुम्णा तु परे लीना विरजा ब्रह्मरूपिणी ।'**—विरजा ब्रह्मरूपिणी सुषुम्णा परपुरुषमें लीन हो गयी है । माकी कृपा तुमको लिये जा रही है । ऊर्ध्वाकर्षणसे तुम स्वतः ही आकर्षित हो रहे हो । प्रकृतिमण्डल और त्रिपाद्विभूतिमण्डलकी व्यवच्छेदिका जो विरजा नदी है, उसमें छलाँग लगाकर कूद पड़नेके साथ-ही-साथ तुम्हारा सूक्ष्म शरीर लुप्त हो गया है । फिर तदनुरूप तुम्हारा शुद्ध सत्त्वमय चिन्मय देह हो गया है । तुम अग्रसर होते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ, कोटिचन्द्र-सुशीतल प्रकाशके देशमें जाकर उपस्थित हो गये हो । वहाँ कितने देवर्षि-महर्षि हैं, उनको प्रणाम करते हुए तुम धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए, अपने अभीप्सित माके सिंहासनके समीप उपस्थित हो गये हो । उन्होंने तुमको पुकारा है । तुम उनको प्रणाम करके ज्यों ही सिंहासनपर चढ़ते हो, त्यों ही वे तुमको अपनी गोदमें ले लेती हैं । सीताराम, सीताराम ।

हरे—उसके बाद, उसके बाद !

पागल—उन्होंने गोदमें लेकर पूछा—'तुम कौन हो?' तुम कहते हो—'मैं आपका दास हूँ; इतनी ज्वाला दी जाती है ? मैं बड़ी यन्त्रणाओंका भोग करता आ रहा हूँ। मैं फिर वहाँ नहीं जाऊँगा।' वे बोले—'मैं तुम हूँ और तुम मैं हो ! मैं सूर्य, तुम रश्मि; मैं चन्द्रमा, तुम किरण; मैं सागर और तुम मेरी तरङ्ग हो। तुममें-मुझमें कोई भेद नहीं है। मेरे इस चिन्मय धाममें, मेरे कैङ्कर्यमें निरत रहकर सदाके लिये यहीं रहो।' सीताराम !

हरे—उसके बाद !

पागल—उसके बाद ! इतने दिनोंतक जिस माकी कल्पना करते रहे हो, उसी माकी गोदमें देकर तुम्हारे ठाकुर कह रहे हैं—'सँभालो—इस तुम्हारे दीर्घ प्रवाससे लौटे हुए पुत्रको।' माने छातीसे चिपका लिया है और तुम माके वक्षःस्थलपर, माके गलेको दोनों हाथोंसे पकड़कर, माके कंधेपर अपना सिर रखकर सो गये हो। मा मा मा ! यहाँ माकी ओर पीठ करके माकी गोदमें बैठे थे, वहाँ माके वक्षःस्थलपर दृढ़ताके साथ माको पकड़े हो। सीताराम, सीताराम। यहाँ मा, वहाँ मा। मा मा मा करते हुए यहाँ शेष कुछ दिनोंको आनन्दसे काटकर, वहाँ जाकर माकी गोदमें सो रहो। बस, किला फतह ! फिर कोई भय नहीं। आओ, मेरा हाथ पकड़ लो, हम दोनों 'मा मा' करते हुए नृत्य करें।

जय मा जय मा जय मा जय,
जय मा जय मा जय मा जय।

कुछ चिन्तन; कुछ अनुभूति

(लेखक—श्रीबालकृष्णजी बलदुवा)

१

जैसे-जैसे पाश्चात्त्य विज्ञान अणुके रहस्योंसे परिचित होता जाता है, वैसे-वैसे जिन्हें हम संस्कृत वाङ्मयमें कल्पनाएँ समझकर मुग्ध होते थे, वे यथार्थताकी सम्भावनाकी सीमामें आ-आकर हमें ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विश्व और मानवपर अन्तर्मुखी होकर सोचनेके लिये बाध्य करती जा रही हैं।

२

कीचड़में कमल भी खिलते हैं। तुम कीचड़को देखते हो या कमलको, यह तुम्हारे मनःस्तरपर निर्भर है।

३

जो भलाईका श्रेय स्वयं न ले, उसे ही अधिकार है बुराई मालिकको समर्पित कर देनेका।

४

मान स्वयमेव प्राप्त होता है, माँगनेसे नहीं मिलता।

५

पात्रकी सामर्थ्य वही, जो बरतनेवाले बतावें।

६

मानवतामें विवाह अर्धाङ्गको सर्वाङ्ग और अपूर्णको सम्पूर्ण करनेका एक मन-मस्तिष्क-समन्वित, श्रेष्ठ समाजोपयोगी साधन है।

७

ज्ञान तभीतक हितकारी है, जबतक उसका मानवताके हितमें प्रयोग किया जाय।

८

जिन्हें हम-आप जनता-जनार्दन कहते हैं, वे अपने त्योहारोंसे प्रादुर्भूत जीवनी-शक्तिके बल-बूते ही जिंदा रहते हैं।

९

त्यागमें सुख, संतोष और शान्तिकी अनुभूति होनी चाहिये। अन्यथा, जिसे हम त्याग कहते हैं, वह वस्तुतः विवशता होती है, जिसकी अनिवार्य अनुभूति खीझ, तड़पन और अवसाद हैं।

१०

अँधियारोंको पार करना ही पड़ेगा उन्हें, जिन्हें चमकना है।

११

विश्वास सहज नहीं टूटता। धारणा सहज ही टूट जाती है।

परमार्थकी पगडंडियाँ

रजोगुणकी वृद्धिमें—प्रवृत्ति, लोभ, कामकी वृद्धि, चित्तचाञ्चल्य और अधिकाधिक स्पृहा होती है। पर बढ़े हुए रजोगुणको यदि अध्यवसाय और कौशलसे सत्त्वाभिमुखी न किया जायगा तो उसका तमोमुखी होना स्वाभाविक है। प्रकृति स्वभावसे अधोगामिनी है। सत्त्व-प्रधान प्रकृतिके पुरुषोंको भी निरन्तर उत्थानके लिये—गुणातीत होनेके लिये सचेष्ट रहना चाहिये। 'जो होगा वही स्वीकार करना पड़ेगा'—यह कातरोक्ति अनुचित भाव है। प्रवाहमें बहना नहीं चाहिये। प्रवाहको अपने अनुकूल बहाकर उससे लाभ उठाना चाहिये। आरामकी इच्छा छोड़कर 'आ राम' की धुन लगानी चाहिये। विषयोंकी विषभरी मोहिनीसे अपनेको सदा बचानेकी कोशिश करते रहो, मेरा सबसे यह बलपूर्वक अनुरोध है।

× × ×

योग-क्षेमकी चिन्ता न करें। केवल भगवान्‌का ही अनन्य चिन्तन करें। गीतामें योग-क्षेम वहन करनेकी भगवान्‌की प्रतिज्ञावाले श्लोककी व्याख्या एक बार पढ़कर विचार करें और देखें कि हम जितना प्रयत्न बाह्य रूपसे करते हैं, उसका थोड़ा-सा अंश भी भगवान्‌पर निर्भर रहकर उनका अनन्य चिन्तन-मनन करनेका प्रयत्न करते हैं क्या?

उत्तम बात तो यह है कि भगवान्‌पर निर्भर करनेवाले साधकको कभी मनमें यह संकल्प भी नहीं लाना चाहिये कि 'मैं निर्भर रहूँगा तो मेरा काम भगवान् और भी सुन्दर कर देंगे।' वह तो बस, निर्भर होकर भजन करता रहे। भगवान् कभी असुन्दर करते ही नहीं। फिर निर्भर भक्तको कामसे क्या मतलब? उसको तो भगवान्‌के भजनसे ही मतलब है; उसका तो बस, एक यही काम है। फिर दूसरे काम बनें, बिगड़ें; रहें, उजड़ें—उनकी ओर उसकी दृष्टि ही नहीं जानी चाहिये। हाँ, यह सत्य है कि जो भगवान्‌पर निर्भर करता है, निश्चय ही उसकी सँभाल श्रीभगवान् बहुत सुन्दर करते हैं।

× × ×

असलमें सृजन और संहार प्रभुकी लीलाके दो रूप हैं, जो बराबर अनवरत रूपसे प्रकट होते रहते हैं। प्रभुकी लीला देखनेवाला उनके प्रत्येक लीलाभिनयमें अभिनेताको पहचानकर और उनकी विचित्र भाव-भंगिमाको देखकर प्रसन्न रहा करता है। वह न उनसे कुछ चाहता है, न उनकी किसी लीलापर एतराज करता है, न मन मैला करता है और न किसी एक ही लीलापर आसक्त ही होता है। वह चाहता है लीलामयके साथ लीलामें खेलना; और लीलामय उसे जब अपनी लीलामें शामिल कर लेते हैं, तब वह अपनेको परम कृतार्थ मानता है।

× × ×

वस्त्रालंकार-आभूषणादि अनादि कालसे हैं। अवश्य ही समय-समयपर इनके रूप बदलते रहते हैं। आभूषणोंमें कई आवश्यक हैं तथा शारीरिक और मानसिक रक्षा एवं उन्नतिके उद्देश्यसे धारण किये जाते हैं। साथ ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके आभूषण उपयोगी साबित होते हैं। यही कारण है कि विभिन्न आश्रम और वर्णके स्त्री-पुरुषोंके, बालक, युवा,

वृद्ध और सधवा, विधवाके आभूषणोंमें भेद है। वस्त्राभूषण केवल श्रृङ्गारके लिये नहीं है। इनके उपयोगका बड़ा रहस्य है। हमलोग उस रहस्यको नहीं जानते और श्रृङ्गारकी दृष्टिसे ही उनका उपयोग करते हैं। परंतु श्रृङ्गारके लिये, दूसरोंको अपना रूप-सौन्दर्य दिखानेके लिये वस्त्राभूषण धारण करना अत्यन्त हानिकर और पापका कारण होता है। वस्त्राभूषणके प्रति आसक्त न होकर, उनके तत्त्वको समझकर, यथायोग्य रीतिसे उनका प्रयोग करना ही उचित और आवश्यक भी है। आजकल वस्त्राभूषण धारण करनेका जो भाव है, उसका कारण श्रृङ्गार, बाह्य सौन्दर्य, फैशन अथवा इन्द्रियोंका दासत्व ही है। भगवान्‌के श्रीविग्रहको वस्त्राभूषण धारण कराना कल्पना नहीं है। भगवान्‌के उपासकके लिये यह उचित है कि वह अपने उपास्यदेवके ध्यानके अनुसार उनके श्रीविग्रहको वस्त्राभूषणसे सुसज्जित करे। सधवा स्त्रीको उचित है कि वह अपने पतिदेवकी शुद्ध रुचिके अनुसार केवल उनकी प्रसन्नताके लिये घरकी स्थिति देखकर आभूषण आदि धारण करे, इसमें कोई आपत्तिकी बात नहीं है। श्रृङ्गारकी दृष्टिसे तो अलंकार आदिका त्याग ही करना उत्तम है। अलंकारादिके रहस्यको न जाननेवालोंके लिये यही निरापद बात है।

× × ×

घृणा किसीसे नहीं करनी चाहिये। जो विषयोंमें रमा रहकर भगवान्‌को भूल जाता है और व्यर्थ जीवन बिताता है, वह अपना नुकसान आप ही करता है। अपना नुकसान करनेवाला पागल या भूला हुआ प्राणी सदा ही दयाका पात्र होता है, घृणाका कदापि नहीं।

× × ×

इस संसारमें जिसका कोई नहीं होता, उसीके भगवान् होते हैं। संसारमें अपना कोई न होना तो सौभाग्य तथा भगवत्कृपाका फल है।

भगवान् तो कहते हैं—

जिसका कोई नहीं जगतमें, उसका प्रियतम होता मैं।
वह मेरे हियमें नित बसता, उसके हिय सुख-सोता मैं॥
नहीं छोड़ता कभी उसे मैं, रहता नित्य उसीके पास।
मैं ही उसका हृदय-स्वामी, वह मेरा निश्चय प्रिय दास॥

'जिसका जगतमें कोई नहीं होता, उसका एकमात्र प्रियतम मैं होता हूँ। वह निरन्तर मेरे हृदयमें बसता है और मैं उसीके हृदयमें सुखसे सो पाता हूँ। मैं उसे कभी छोड़ नहीं सकता—नित्य-निरन्तर उसीके पास रहता हूँ। मैं ही उसके हृदयका स्वामी हूँ और वह निश्चय ही मेरा प्रिय है।'

इस प्रकार भगवान् ऐसे प्रेमीको केवल हृदयमें ही नहीं बसाते; केवल उसके हृदयमें ही नहीं रहते, वरन् निरन्तर उसके पास रहते हैं, उसे कभी छोड़ते नहीं, स्वयं उसके हृदयस्वामी बनकर उसको अपना प्रिय दास बनाये रखते हैं। ?अतएव जो अन्य किसीका न रहकर केवल भगवान्‌का ही हो जाता है और जिसको भगवान् स्वीकार कर लेते हैं, सचमुच उसका चित्त वे सदाके लिये चुरा लेते हैं और इस चित्त-वित्तके बदलेमें अपनेको दे डालते हैं, पूरा-पूरा दे डालते हैं। मनकी साध तो प्रेमराज्यमें कभी पूरी होती ही नहीं; क्योंकि प्रेम अनन्त है। प्रेमीके हृदयकी जलन भी बड़ी मधुर होती है; क्योंकि प्रेम-वैचित्त्यवश नित्य पास रहनेपर भी नित्य वियोगका अनुभव कराती प्रकट होती है।

प्रेम भगवान्‌की अखण्ड और सुखमयी स्मृति कराता है। प्रभुकी स्मृति स्वभावतः ही दूरी, भेद और विस्मृतिका विनाश कर देती है और दिनोंदिन प्रेमरसके परिमाण तथा माधुर्यको बढ़ाती रहती है। प्रेम ही एक ऐसा रस है, जो सारी नीरसताका नाश करके जीवनको रसमय बना देता है। जीवनमें नीरसता रस प्राप्त करनेकी इच्छासे निरन्तर कामका सेवन कराती है और कामसे नये-नये दोष, विकार, दुःख, निराशा, विषाद आदि उत्पन्न होते रहते हैं। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको सदा-सर्वदा पवित्र प्रेमरसका सेवन करना चाहिये, जो रसरूप, रसमय, रसराज प्रभुका सारी दूरी तथा समस्त भेदोंको मिटाकर नित्य-स्पर्श, नित्य-मिलन करा देता है।

× × ×

मैं सर्वथा परतन्त्र हूँ, क्या करूँ। सोचता हूँ कुछ और, तथा होता कुछ और ही है। इससे कभी-कभी तो ऐसा मन करता है कि व्यर्थमें सोचनेका पचड़ा क्यों रक्खा जाय, परंतु दुर्मति मानती ही नहीं। अहंकार पछाड़ ही देता है। फिर जब देखता हूँ कि मनकी कुछ भी नहीं होती; खेल वही खेलना पड़ेगा जो वह खिलायेगा, तब अपनी अहंकारविमूढ़तापर और उसकी लीलापर हँसी आती है। ख्याल करता हूँ, कठपुतलीको किसी बातके सोचने-समझनेके लिये 'मन' रखनेकी ही क्या आवश्यकता है? उसका काम तो सूत्रधारके संकेतपर बिना सोचे-समझे नाचना ही है। उसमें 'मन' आ गया तो कठपुतली मनपुतली न हो जायेगी! बस, इसी उधेड़-बुनमें रहता हूँ। वह जैसा देख दिखाता है, देखता हूँ। कभी नीरव हँसता हूँ, कभी चुपके-चुपके रोता हूँ। बाहर तो सयाना बना रहता हूँ—अहंकारकी मूर्ति होकर। भीतर वह निरन्तर छेद कर रहा है, चलनी-सा कर दिया है। उसमें और किसीके टिकनेकी गुंजाइश नहीं रही। अपने इस प्रलापकी व्याख्या भी क्या करूँ। बस, नटवर जैसा-कुछ बना दे और नचा दे। आशीर्वाद दीजिये, जिसमें मन, बुद्धि और अहंकार—सभी नटवरके संकेतानुकूल नाचनेमें सहायता करें। ये भी उसीके हो जायँ और नाचा करें साथ-साथ। नाचते तो हैं, परंतु यह संदेह कभी-कभी होता है कि ये कहीं स्वतन्त्र तो नहीं नाचते हैं?

× × ×

जीवन तो प्रभुके चरणोंमें सदाके लिये समर्पित ही है। जीवन-पुष्प उनके चरणोंमें चढ़ा हुआ है। अब नया समर्पण और नया चढ़ाना क्या होगा? थोड़ी-सी सीमामें हम क्यों आबद्ध रहें? प्रभु-चरण सर्वत्र हैं, सदा हैं और हमारा अनन्त जीवन भी सर्वत्र, सदा, जहाँ प्रभु रक्खें, वहीं उनके समर्पित है। अतएव निश्चिन्त रहना चाहिये। प्रभुपर चढ़े जीवनके लिये हम क्यों चिन्ता करें? जैसी उनकी इच्छा हो, करें-करावें। अपने तो उनके हाथकी कठपुतली बने रहना है। वे नचावें, घुमावें, ऊपर करें, नीचे करें, सुला दें, बिठा दें, भगा दें—जो कुछ भी करें। सदा उनके हाथके इशारेपर सब कुछ होता रहे।

× × ×

भगवान्‌की मधुर स्मृति बनी रहे और उस स्मृतिको लेकर चित्तमें निरन्तर आनन्द-सुधाकी धारा बहती रहे। कभी विषाद, शोक हो ही नहीं। जगत्‌के प्राणि-पदार्थसे कोई आशा न रहे। जगत्‌की आशामें ही दुःख है। सच्चा सुख तो भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर विश्वास करके नित्य आत्म-सुखमें निवास करनेमें ही है। यह सुख—भगवान्‌के सांनिध्यका सुख तुम्हारे पास है। यह धन कभी तुमसे पृथक् नहीं है। तुम इस धनके नित्य स्वामी हो। बस, नित्य-निरन्तर अनुभव

करते रहो और परमानन्दमें निमग्न रहो। मनमें जरा भी निराश-उदास मत होओ। उनका नित्य मङ्गलमय स्मरण सदा बना रहे।

× × ×

भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि कृपापूर्वक अपनी निर्मल विशुद्ध कामना-गन्ध-लेशरहित पवित्र प्रीति प्रदान करें। मनुष्य बहुत बार अपनी छिपी कामनाओंकी पूर्तिको प्रीति मान लेता है और यों विषयोंमें उलझा रह जाता है और जीवनकी अमूल्य घड़ियाँ व्यर्थ बीत जाती हैं। इसलिये सदा सावधानीके साथ मनको टटोलते रहना चाहिये कि उसमें कहीं जरा भी छिपी भोगवासना न रह जाय। सारा मन पूर्णरूपसे केवल पवित्र भगवत्प्रेमसे भर जाय। नित्य-निरन्तर उनका पवित्र स्मरण होता रहे और उसीसे परमानन्दकी अनुभूति होती रहे। संसारके सुख-दुःख, हानि-लाभ, मानापमानादि द्वन्द्वोंका मनपर कोई असर न हो। मन सदा-सर्वदा भगवान्‌के चिन्तनमें परम सुख प्राप्त करता रहे। उसीमें रम जाय।

× × ×

प्रेमका दान भिक्षुकको नहीं मिलता, वह तो अधिकारीको ही मिलता है और अधिकारी वही है, जो प्रियतम प्रभुको सदा देता ही रहता है; कभी कुछ चाहता—माँगता नहीं। इसीमें नित्य नवीन पवित्र रसानुभूति होती है। भगवान् स्वयं लालायित रहते हैं, उसके मधुर प्रेमरस-सुधाका आस्वादन करनेके लिये! यही भजन है।

× × ×

मनका मिलन प्रत्यक्ष मिलनेसे कहीं अधिक महत्त्वका तथा सुरुपष्ट होता है। जिनको यह सौभाग्य प्राप्त है, वे ही जानते हैं। शरीर दूर रहनेपर भी मनके मिलनसे कितना अधिक निकटका सम्बन्ध रहता है, कितनी अधिक संनिधि रहती है, कितनी अधिक व्यवधानरहित रसानुभूति होती है, यह अनुभवका विषय है और मनका मिलन ही असली मिलन है। भगवान्‌ने गीतामें मन-बुद्धिके समर्पण—मनके मिलनपर ही विशेष जोर दिया है। शरीरका मिलन किसी भी कारणसे किसीके द्वारा भी हटाया जा सकता है, पर मनके मिलनको हटानेकी शक्ति किसीमें नहीं है। यह चलते-फिरते, सोते-जागते, एकान्तमें-भीड़में, घरमें-मन्दिरमें, महलमें, पूजा-स्थलमें, रणक्षेत्रमें—सभी अवस्था और समय बना रह सकता है। उसमें न एकान्त स्थानकी आवश्यकता है और न एकान्त समयकी। परम प्रसन्नतासे वह हो सकता है, रह सकता है। अर्जुनसे भगवान्‌ने यही कहा था कि 'तुम मनसे मुझमें मिले रहो और शरीरसे युद्ध करो'। अतएव शरीर घरमें रहे, घरके काममें रहे—मन भगवान्‌के पास सदा रहे या मनमें केवल भगवान् ही सदा बसे रहें—अपना एकाधिपत्य जमाकर, मनके एक-एक कोनेमें छाकर। मीराँने कहा—'हृदय बसी वह माधुरीमूरत उर बीच आन अड़ी।' हृदयमें किसी दूसरेके लिये क्षणभरको भी स्थान न रहे—'नाहिन रह्यो हियमें ठौर'। मीराँ बोली—

औरोंके पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजे पाती।
मेरे पिया मेरे हिये बसत हैं, मिली रहूँ दिन-राती॥
और सखी मद पी-पी माती, मैं बिनु पीये माती।
मैं मद पीयो प्रेम भठीको, छकी रहूँ दिन-राती॥

यों दिन-रात मिले रहना और प्रेममदसे छके रहना मनके मिलनसे ही सम्भव है—

चलत, चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदयतें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

बुराइयोंके अन्धकारमें अच्छाइयोंकी किरणें

[सदाचार-सम्बन्धी सत्य घटनाएँ]

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥

(सामवेद ९)

अर्थात् (पापी, अधम, गिरे हुए लोगोंमें भी परमात्माके तत्त्व हैं । देर-सवेर यह परमात्मा प्रकट होकर उन्हें सत्पथपर चलाता है ।) परमात्मा ज्ञानियोंके हृदयमें प्रकाशरूप और मस्तिष्कमें विचाररूपमें प्रकट होता है ।

अजीब आत्म-समर्पण

थानेदार साहबको उस दिन सुबह-ही-सुबह किसीने आवाजें दीं—'साहब ! नीचे आइये । मुझे आपसे कुछ अर्ज करना है । थानेदार साहब ! थानेदार साहब !!'

दुमंजिला मकान था । थानेदार साहब रात किसी खूनके मामलेकी तफशीशसे देरमें लौटे थे । अभी सो रहे थे । नीचेसे बार-बार आवाजें आनेसे उनकी पत्नीने उन्हें जगाया, 'देखिये तो, एक तगड़ा-सा आदमी बड़े तड़केसे ही आपसे मिलनेके लिये बाहर बैठा है । शायद कोई बात है, जिसे उसे आपसे कहनी है । मैंने उसे बाहर बैठे बहुत देरसे देखा है ।'

आँखें मलते-मलते वे कह उठे—'कानेस्टबिल भेजकर पुछवाया कि क्या चाहता है वह ? मुझे तो नींद आ रही है । इतनी जल्दी न उठाओ ।'

'जी, दो बार वह उससे पूछ आया है । तबतक आप सोये रहे । अब एक घंटा हो गया उसे बाहर बैठे-बैठे । बेचारा अधीर होकर फिर आवाजें देने लगा है । तनिक देखिये न, कोई मुसीबतजदा मालूम होता है । चेहरा मायूस, आवाजमें दर्द और पीड़ा, मुँहपर हवाइयाँ उड़ती हुईं ! उठिये तो ! देखिये, कौन है ?'

पत्नीकी सहानुभूतिपूर्ण आवाजसे थानेदार साहब कुछ नरम पड़े । खिड़कीसे झाँककर पूछा, 'कौन हो ? अच्छा, नीचे आ रहा हूँ । थोड़ा और बैठो !'

वह दुखी आदमी प्रतीक्षामें नेत्र बिछाये फिर थानेके बाहर चबूतरेपर उसी प्रकार बैठ गया । बड़े तड़के ही वह थानेमें पहुँच गया था । पहरेपर खड़े कानेस्टबिलने उसे अंदर न घुसने दिया था ।

'मुझे थानेदार साहबसे ही एक खास काम है । कोई खुफिया-सी बात है । आपसे कोई पुलिस-रिपोर्ट नहीं लिखानी है ।' वह यही कहता ।

मुंशीजीने उससे कई बार पूछा, पर वह कुछ न बोला । गुमसुम ही बना रहा । उसने मनकी गुत्थी किसी दूसरेसे न खोली ।

'मुझे तो सीधे थानेदार साहबसे ही कुछ खास काम है ।' वह यही उत्तर देता । पर कुछ कहनेको अधीर था ।

'अच्छा, तुम बाहर बैठकर उनकी प्रतीक्षा करो । वे घंटे भर बाद ही मिल सकेंगे ।'

कानेस्टबिल यही कहकर उसे ठहराये रहे । वह थानेदार साहबकी प्रतीक्षामें बाहर बैठा-बैठा थक गया ।

सचमुच एक घंटेका भी डेढ़ घंटा हो गया, पर थानेदार साहबकी नींद न खुली और खुली भी तो, उन्होंने जल्दी नीचे आनेका कष्ट न किया । पुलिसके अफसरोंकी नींद आसानीसे नहीं खुलती है ।

पुकारनेपर उत्तर पा, आगन्तुकको कुछ संतोष हुआ । वह चबूतरेपर बैठकर फिर उत्सुकतापूर्वक उनकी प्रतीक्षा करने लगा ।

× × ×

थोड़ी देर बाद बैठकका दरवाजा खुला । कानेस्टबिल आगन्तुकको अंदर लिवा ले गया । क्रूर थानेदार तने हुए बैठे थे, जैसे निरीह बकरेको जिबह करनेको तैयार कसाई !

'क्या काम है ? तुमने मुंशीजीको ही रिपोर्ट क्यों नहीं लिखा दी थी ? फिजूल मुझे परेशान किया ।' कड़ककर थानेदार साहब बोले, मानो बंदूकसे गोली छूटी !

'माफ करें, सरकार ! मुझसे गलती हो गयी ! कुछ ऐसी गुप्त बातें हैं, जो सिर्फ हजूरसे ही अर्ज करनी थीं ।' विनयके स्वरमें आगन्तुक बोला ।

'आश्चर्य है, मुझसे कौन-सी पोशीदा बातें कहनी हैं ! यहाँ तो चोर, डकैत, कातिल, बदमाश, आवारागर्द लोग ही आते हैं और वे हर बात छिपानेकी कोशिश करते हैं। अजीब आदमी हो, जो खुद अपनी गुप्त बातें आज एक पुलिसके अधिकारीसे कहने आये हो !'

सहानुभूतिके ठंडे स्पर्शसे वह व्यक्ति कुछ आश्वस्त हुआ। उसमें धैर्य और साहसका संचार हुआ।

फिर वह कहने लगा—'वही तो हजूरसे अर्ज करना चाहता हूँ। मनमें जो गर्द-गुब्बार इकट्ठा हो गया है, उसे कहकर मनका भार हल्का करना चाहता हूँ। आपको ही तो सारी बातें खास तौरपर सुनाना चाहता हूँ। कुछ ऐसी गुप्त बातें हैं, जो सिर्फ आपसे ही निवेदन करनी हैं। सबसे बड़े अफसरतक पहुँचानी हैं।'

'तो मुझीसे कहनी हैं ?' आगन्तुककी बातोंमें रुचि लेते हुए थानेदार साहबने सूत्र पकड़ा—'अच्छा, कहो ! क्या कहना है तुम्हें ! क्या स्पष्ट करनेको तुम थानेके दरवाजे-पर दो घंटेसे बैठे हुए हो ? अरे भले मानुष ! यहाँसे तो लोग दूर-दूर भागते हैं। एक तुम हो, जो कहनेको दो घंटेसे बैठे हो। क्या किसीकी शिकायत करनी है ?'

'एक टाइम था, जब मैं भी थानेसे ऐसे ही दूर भागता था। जैसे अपराधी फरार या डकैत भागा करते हैं।'

तो क्या तुमने भी कभी अपराध किया था ?'

'जी हुकुम, मुझसे भी वह भयानक गलती हो गयी थी।'

'तो जेलखानेकी मार भी पड़ी होगी ? पुलिसके हंटरों-के कड़े निशान कमरपर उभर आये होंगे ? एक बार जेलखाने जाकर कौन भूल सकता है !'

'जी नहीं, जेलखाने तो नहीं गया !'

'कसूर किया, पर जेलखाने नहीं गये ! कानूनकी पैनी निगाहसे बचे रहे। खूब, तुम बड़े चालाक निकले। आँखोंमें धूल झोंक दी तुमने। शैतान कहींके !' थानेदार-के स्वरमें कठोरता आ गयी।

'पुलिसको तो चकमा दिया, पर खुदको धोखा न दे सका, सरकार ! मेरे मनमें ईश्वरकी दिव्य ज्योति चमकने लगी। मुझे यह विवेक हुआ कि मुझे देवत्वकी ओर बढ़ना चाहिये, असुरताकी ओर नहीं ! अपने अपराधपर बड़ा पछतावा हो रहा है। उसीकी माफी माँगने आया हूँ हजूर !' कहते-कहते उसके नेत्रोंसे आँसू झरने लगे। चेहरा फीका पड़ गया।

'अभियुक्तको पछतावा ! यह खूब कही ! हमने तो सारी जिंदगी पुलिसमें गुजारी है, पर किसी खूनी, चोर, डकैत, अपराधीको पछताते नहीं सुना। आज पहली बार यह तुम्हारी जुबानी सुन रहे हैं। साफ बताओ, क्या बात है ? तुम आखिर क्या कहना चाहते हो ?' थानेदार साहब गुर्राये।

''जी ! मैं अपनी अपराध-वृत्तिपर बड़ा लज्जित हूँ। मैंने महसूस किया है कि जो गलती करके नहीं सुधरता, वह बड़ा अभागा और मूर्ख है। जो आदमी इस सुरदुर्लभ मानवजीवनको पाकर उसे सुचारु रूपसे संचालित नहीं करता अथवा ऊँचा उठनेकी कोशिश नहीं करता, तो उसका यह बड़ा दुर्भाग्य ही कहा जायगा। मानवजीवन वह पवित्र क्षेत्र है, जिसमें परमात्माने सारी विभूतियाँ बीजरूपमें रख दी हैं और जिसका विकास नरको नारायण बना देता है। प्रायश्चित्त-स्वरूप आज अपना अपराध आपके सामने कबूल करने आया हूँ। जबसे मैंने डाकेजनीमें भाग लिया था, तबसे ही मेरी आत्मा पापकर्मके लिये अंदर-ही-अंदरसे कचोटती रही है। मैं अब किये हुए अपराधको दबा नहीं पा रहा हूँ। आत्माकी आवाज कहती है कि 'अपना पाप कह दे। सबके सामने कबूल कर ले और उसकी सजा भुगत ले, तो प्रायश्चित्त हो जायगा और मनका भार हल्का हो जायगा।' इसी गुप्त मानसिक व्यथाको हटानेके लिये अपना अपराध प्रकट करने हजूरके पास आया हूँ। मुझे माफी दी जाय।''

वह रो रहा था। प्रायश्चित्तके आँसू बह रहे थे।

'तुम कौन हो ? पूरी तफसील दो कि क्या-क्या हुआ ? कैसे हुआ ? क्या केस है ?' थानेदारने कहा। 'अपनेको दीन-हीन और दुखी मानकर रोते रहना, दिन-रात खुदको अपराधी ही मानते रहना तो आत्माका अपमान है। जिस आदमीको आत्मा-जैसा प्रसाद मिला हो, बुद्धि और विवेक-जैसा पुरस्कार मिला हो, क्षमता और विशेषताओंसे भरा सुन्दर सुदृढ़ शरीर मिला हो, वह मनुष्य भला दीन-हीन कैसे हो सकता है ? दीनता और अपराधका

अनुभव करना मनुष्यकी अपनी मानसिक न्यूनताके सिवा और कुछ नहीं है !'

अपराधी अपनी जीवन-कथा कहने लगा—

'मैं जुम्मन नामक फरार अभियुक्त हूँ' उसके नेत्रोंसे गरम अश्रुधार बहने लगी। 'मेरा सम्बन्ध नौ माह पूर्व कानपुर जिलेके ग्राम बारा (ककवन थाना क्षेत्र) निवासी मोहनलाल नामक ग्रामीणके घर घटित सशस्त्र डाकेजनीसे है। मेरे नेतृत्वमें ही वह डकैती हुई थी। इसके अलावा मैंने कई जगह और भी छोटी-मोटी चोरियाँ करवायी हैं। पर अब मुझे ऐसा अनुभव हुआ है कि यह सब पापकर्म था। मेरी अपराधवृत्तिका कुफल था। एक शरीफ नागरिकको चोरी-डकैती-जैसा पापकर्म नहीं करना चाहिये। अब मैं समझता हूँ कि साहसी आदमी वही है, जो अज्ञानमें की गयी भूलके लिये प्रायश्चित्त करनेमें संकोच न करे। मुझे सजा दिलवाइये।'

थानेदार साहब डकैतका आत्मसमर्पण देखकर चकित रह गये। वे सोचने लगे कि आजकी समस्त विकृतियाँ मानवीय आदर्शों तथा व्यक्तिगत जरूरतोंको बढ़ा लेनेके दुष्परिणामस्वरूप ही हैं। झूठ, कपट, चोरी, डकैती, वैषम्य और संकीर्ण स्वार्थपरताकी अभिवृद्धिने संसारमें अगणित प्रकारकी उलझनें और समस्याएँ पैदा की हैं। अपने चारों ओर जिन कुत्साओं और कुण्ठाओंका घटाटोप छाया हुआ हम देखते हैं, उनके पीछे मानवीय दुर्बुद्धियों और दुष्प्रवृत्तियोंका ही खेल है। आधार जबतक विद्यमान है, तबतक सुधारकी आशा किस प्रकार की जाय ? मनमें विष भरा हो, तो अपराधोंसे छुटकारा कैसे मिले ? आगको हाथमें लेकर जलनेसे बचाव कैसे हो ?

थानेदार साहबने जिज्ञासावश पूछा—

'अब आगे तुम्हारा क्या करनेका विचार है ?'

'जी, मैं अब शेष जीवनमें अच्छाई और शराफतकी जिंदगी अपनाना चाहता हूँ। शेष जीवनमें जो कुछ बन सके, भलाई और उपकार करना चाहता हूँ। अबतक डकैत बने रहनेमें गर्व करता रहा हूँ; आगेसे सज्जन कहलानेकी इच्छा रखता हूँ। मैंने हर प्रकारकी टक्करें, मशक्कतें कर, चोरी कर रुपया गवाँकर सीखा है कि शराफतका जीवन ही स्थायी और शान्तिमय जीवन है। परोपकार ही मनुष्यका सहज कर्त्तव्य है। उसीसे उसकी आत्माको शान्ति मिलती है। आवारागर्दीसे आत्मा दुखी रहती है।'

यह सुनकर थानेदार साहब संतुष्ट हुए।

'तब तो मैं तुम्हें शरीफ बनानेमें हर सम्भव कोशिश करूँगा—ऊँचा उठते हुएको सहायता देना परोपकार है। गिरे हुएको सज्जन बनाना भी तो धर्म ही है। मैं तुम्हें अदालतसे माफी दिलवाऊँगा।'

थानेदार साहबने कोशिश भी की और अन्तमें वे अपने शुभ मनोरथमें सफल होकर भी रहे।

एक दिन अखबारोंमें यह समाचार छपा—

'कानपुर, जिला फर्रुखाबादके जुम्मन नामक फरार अभियुक्तने आज यहाँ श्री एम० सी० सिंह जे० ओ० भोगनीपुरकी अदालतमें आत्मसमर्पण कर दिया। अभियुक्तका सम्बन्ध नौ माह पूर्व जिलेमें ग्राम बारानिवासी श्रीमोहनलाल नामक ग्रामीणके घरमें घटित सशस्त्र डाकेजनीसे था। प्रायश्चित्तका ऐसा उत्तम उदाहरण कम मिलता है।'

हर मनुष्यमें, चाहे वह कितना ही गिरा हुआ क्यों न हो, सद्‌गुण छिपे रहते हैं। तनिक-सा शुभ प्रोत्साहन पाकर वे सही दिशाओंमें विकसित हो सकते हैं। जरूरत यह है कि हम कर्मठ होनेके साथ-साथ अपने इर्द-गिर्दके व्यक्तियों, गिरे हुओंको भी कर्तव्यपरायण बनायें। शुभ कर्मोंके प्रति उत्साह भरें। जो अपनी पवित्र और ऊँची विशेषताओंके अनुरूप विशेषताएँ अपने साथियोंमें विकसित नहीं करता, वह एक दिन या तो उनके संसर्गसे निकम्मा हो जायगा, या वह बिना साथीके अकेला रहा जायगा।

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृळा सुक्षत्र मृळय॥ (ऋग्वेद ७। ८९। ३)

ईश्वरको साक्षी मानकर अपनी त्रुटियाँ, ऐब, दुर्गुण तथा दुष्कर्म स्वीकार करते रहें; ताकि इनके निवारणमें ढील न पड़े। परमात्मासे हमारी यही प्रार्थना हो कि 'प्रभो! हमारे दुर्गुण दूर करो।'

हत्यारेका हृदय-परिवर्तन

अहमदाबाद जेलमें आज एक हत्यारेको फाँसी देनेकी तैयारियाँ की जा रही हैं। सुबहसे ही जेलके कर्मचारी और कैदी इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हैं। कानेस्टबिल और

अफसर अहातेमें दौड़ रहे हैं। जेलके अहातेमें बड़ी चहल-पहल है।

फाँसीके इर्दगिर्दका स्थल साफ किया जा रहा है। बहुत कम दिन ऐसे होते हैं, जब जेलमें ऐसी सजीवता नजर आती है। फाँसीकी सजा उन हत्यारोंको मिलती है, जो हर दृष्टिसे गिरे हुए लाइलाज अपराधी होते हैं। अदालत यह समझकर मौतकी सजा देती है कि अमुक हत्यारे समाजके लिये खतरनाक हैं। पता नहीं, उत्तेजनामें और कितनोंको कभी भी मौतके घाट उतार दें।

कोई भी अनुचित कार्य करनेसे पूर्व मनुष्यका अन्तःकरण उसे पापकर्मसे सावधान कर देता है। फिर भी यदि मनुष्य बुराईमें प्रवृत्त होता है, तो उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है! अन्तःकरणकी आवाजको दबाना ईश्वरके संकेतको दबाना है।

हत्यारेका नाम कान पर्वत पटेल था। वह जूनागढ़के एक गाँवका निवासी था। जुआ और चोरीके अभियोगमें उसे दो कानेस्टबिलोंने गिरफ्तार करनेका प्रयत्न किया था। वह खूँख्वार प्रवृत्तिका था और हिंसा करनेमें उसका मन खुला हुआ था। मारपीट, गाली-गलौज, डाकेजनी और हर तरहकी गुंडागर्दी करनेकी उसकी खोटी आदत थी। शरीरसे वह तगड़ा था। निर्द्वन्द्व खाना-पीना, आवारागर्दी करना, हर तरहकी शरारत करना उसका स्वभाव था—उच्छृङ्खल सिंहकी तरह।

इसलिये जैसे ही पुलिसवालोंने उसे हत्या करते हुए गिरफ्तार करनेका उपक्रम किया, उसने अपनी जेबसे छुपा हुआ तेज चाकू निकालकर उनके पेटमें घुसेड़ दिया। रक्तका फव्वारा बह निकला। एक गिरा, तो दूसरा कानेस्टबिल भागा। पर हत्यारेने उत्तेजित होकर उसकी पीठमें भी तेज छुरा भोंक दिया। अब उसके हाथ खूनसे सने थे। रक्तसे सना लाल-लाल छुरा उसके हाथमें था।

तड़पती हुई दो लाशें रक्तमें नहा रही थीं। उसे क्या पता था कि क्रोधके पागलपनका क्या कुफल होता है! पर हत्यारा भाग न सका। शोर करती हुई उत्तेजित भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग पागल-से होकर चिल्लाने लगे—

'पकड़ो! पकड़ो!! इस दुष्टने दो खून कर दिये। कातिल कहीं भाग न जाय!!!'

लोग लाठी ले-लेकर चारों ओरसे घिर आये। कातिल हक्का-बक्का रह गया। कोशिश तो की, लेकिन वह कहीं भाग न सका। चारों तरफसे घिरकर आखिर पकड़ लिया गया।

पहले तो उत्तेजित भीड़ने कातिलकी खूब मरम्मत की, फिर कत्लका केस पुलिसके पास आया। कत्लका मुकदमा कई वर्षोंतक चलता रहा। दोनों ओरसे वकीलोंने बहस की। उसे पागल करार दिया गया, पर मौतकी सजासे उसे कोई बचा न सका। अन्तमें अदालतने फाँसीकी सजाका हुक्म दिया। आज उसे फाँसी मिलनेवाली है। उसीकी तैयारी की जा रही है!

अन्तिम दिनोंमें सदाचार-समितिके कुछ कार्यकर्त्ता हत्यारेसे मिले थे। उपदेशों तथा प्रार्थनाओंद्वारा उसका हृदय-परिवर्तन करनेका उन्होंने प्रयास किया था। वे सफल भी हुए।

उन्होंने कई दिनोंतक हत्यारेको उपदेश दिया था, 'आगके समीप रहनेसे शीतका कष्ट चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य पापकी ओर तब बढ़ता है, जब वह परमात्मासे दूर रहता है। आपके शरीरमें ईश्वरका निवास है। आपमें समस्त सद्भावनाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ हैं। ईश्वर-पूजाके लिये किसी प्रतिमाकी पूजा या विशिष्ट साधन-पद्धतिकी आवश्यकता नहीं है। उसकी पूजा तो ईश्वरकी बनायी उस जीव-सृष्टिकी पूजा करना है। ईश्वर हमारी शुभ सात्त्विक भावनाओंमें निवास करता है।

'जिसके भीतर जितनी समाज-सेवाका भाव और सदाचरण रहेगा, उसमें उतना ही ईश्वरीय प्रकाशका उदय माना जा सकता है। परमात्माका दिव्य प्रकाश जिस भी अन्तःकरणमें उदीयमान रहेगा, उसमें तृष्णाओं और अपराध-भावनाओंका अन्धकार कैसे टिकेगा? वहाँ द्वेष, चिन्ता, भय, निराशा और उद्वेगके लिये स्थान कहाँ रहेगा?'

इस प्रकारके आत्मसुधार-विषयक उपदेश सुनते-सुनते उस हत्यारेके विचारोंमें खलबली मच गयी। ईश्वरका चमत्कार उसमेंसे प्रकट हुआ। उसमें आस्तिकता और परोपकारकी दिव्य भावनाएँ उदित हुईं।

उसने अनुभव किया कि विकृति और अपराध-वृत्तियोंमें फँसकर उसका समस्त जीवन नष्ट हो चुका है। उसने अपने आपको अपराधी माना। दो-दो हत्याएँ कर देनेके

पापसे वह विक्षोभपूर्वक प्रायश्चित्त करनेको बेचैन हो उठा। मनुष्यके भीतर जहाँ असुरता होती है, वहाँ उससे अधिक देवत्व भी होता है। अब इस हत्यारेके देवत्वने जोर मारा। उसका दृष्टिकोण एकाएक बदला। अब वह नयी दृष्टिसे सोच रहा था—'अब क्या करूँ, जो अन्तसमयमें मेरे इस शरीरसे कुछ परोपकारका कार्य हो जाय ?'

फल क्या हुआ ?

अन्तिम क्षणोंमें वह हत्यारा बदलकर एक नये तरहका भगवद्भक्त उदार आदमी बन गया। उसमें देवत्व जाग्रत् हो उठा। पुण्य, सज्जनता, शील, गुण, सहानुभूति, दया, परोपकार मनुष्यकी जन्मजात विभूतियाँ हैं। एक बार सज्जनों-जैसा जीवनका मधुर स्वाद चखनेपर मनुष्य स्वयं पापसे घृणा करने लगता है। उसे पाप-वृत्तियोंमें फँसते हुए अस्वाभाविकता और पश्चात्तापका अनुभव होने लगता है। पुण्य तथा देवत्वका रास्ता मिल जानेपर कोई भी व्यक्ति किसीको नीचा नहीं दिखा सकता; क्योंकि सत्य, प्रेम, स्नेह, पुरुषार्थ तथा सौहार्दमें मनस्विता और तेजस्विता होती है।

परोपकारभावका परिणाम आन्तरिक प्रकाश है, जिसे प्राप्तकर मनुष्यका जीवन आनन्दमय हो जाता है। परमात्मा ऐसे सैकड़ों तरीके निकाल देता है, जिससे उसे जीवनके सद्व्ययका नया अवसर प्राप्त हो जाता है।

गीतामें भगवान्ने स्वयं घोषणा की है—

'जो प्राणिमात्रका मित्र है, जो दयाशील है, जो मोह-ममता और अहंकारसे रहित सत्कर्म करता है, जो क्षमावान् है, सर्वदा संतुष्ट, स्थिर-चित्त, संयमी तथा दृढ़निश्चयी है, जिसने अपने मन तथा बुद्धिको प्रीतिपूर्वक मुझे समर्पित कर दिया है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। वह सुख-दुःखमें समान रहता है। क्रोध भी उसे नहीं आता। इस प्रकार पुण्य-कार्योंमें विश्वास रखकर, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितको ध्यानमें रखकर आचरण करता है; निन्दासे दुखी नहीं होता, मान-प्रतिष्ठासे हर्षित नहीं होता। जो सुख-दुःख दोनोंको समानरूपसे प्यार करता है, वह पुण्यात्मा मुझे प्रिय है।'

हत्यारेने उस फाँसीको अपने लिये वरदान समझ लिया। उसने यह माना कि 'ईश्वर उसके पापपूर्ण इस जीवनका अन्तकर अगले जन्ममें श्रेष्ठतर जीवन देनेकी युक्ति कर रहा है। मौतकी सजा पाकर इस अपराधवाली कलङ्कित जिंदगी-से छुटकारा मिल जायगा। अगले जन्ममें वह भला इन्सान बनेगा।'

मृत्युसे पूर्व आदमीके जैसे विचार और भावनाएँ मनमें होती हैं, वैसा ही उसे पाप या पुण्यका फल मिलता है। मरते-मरते भगवान्का नाम ओठोंपर रखनेसे कितने ही पापियोंको मुक्ति मिली है।

फाँसीके दिन—

वह बड़े तड़के उठा। पहली बार पूर्ण श्रद्धा और विश्वाससे हृदयमें स्थित भगवान्को पुकारकर बोला—

'हे ईश्वर ! अब मैं तेरी शरणमें आ रहा हूँ। मैं अपने पुराने पापोंके कलुषित जीवनसे ऊब उठा हूँ। मैं पापकी गंदगीमें नहीं रह सकता, पुण्य और सज्जनताका नया जीवन चाहता हूँ। मेरे पुराने संचित पापों और अपराधोंको क्षमा करो। नया अगला जीवन ऐसा दो, जिससे शुद्ध आचरणका अवसर मिले।'

जब जेलके क्रूर कानेस्टबिल उसे फाँसीपर चढ़ानेके लिये आये, तो परमात्माकी प्रार्थनामें उसके हाथ जुड़े हुए थे।

उसे फाँसीके तख्तेपर खड़ा कर दिया गया।

अधिकारियोंने पूछा—'मरनेसे पहले क्या तुम्हारी कोई इच्छा है ?'

'मुझे अपने संचित दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त करना है।'

'वह किस तरह ? प्रायश्चित्तका क्या तरीका सोचा है तुमने ?'

'एक बख्शीशनामा बना कर।'

'किसके नाम अपनी सम्पत्तिको बख्शीश करना चाहते हो ?'

वह सोचता रहा। फिर जैसे ईश्वर ही उसके मुँहसे बोला—

'मैं अपनी सम्पत्तिका आधा भाग उन दोनों सिपाहियों-की धर्मपत्नियों और बच्चोंको देना चाहता हूँ, जिनकी हत्या आवेशके कारण मेरे हाथों हो गयी है।'

उसकी यह इच्छा सुनकर इधर-उधर खड़े जेलके सिपाही और अधिकारी चकित—विस्मित थे। परोपकारका यह भाव कहाँसे आ गया इस हत्यारेमें ?

सच बात तो यह है कि मानवीय सदाचरणके बीज पापी, अपराधी, हत्यारे इत्यादि सबमें सोये पड़े रहते हैं।

उन्हें जगानेकी जरूरत है। यदि उचित प्रोत्साहन मिले, तो ये बीजाङ्कुर आज नहीं तो कल जरूर पनपेंगे।

आप समाजको जो कुछ बन सके, सेवा-सहयोग, सहानुभूति, परोपकारके रूपमें कुछ भी दीजिये। धनवान् धन दे सकता है और शक्तिमान् साहस!

किंतु जो न धनवान् है, न शक्तिमान्, वह किसीको कुछ देनेकी इच्छा रखता है, तो क्या दे? यह प्रश्न बहुत-से उदार हृदयोंको निष्फल बना देता है।

जिसके पास प्रत्यक्षरूपसे कुछ देनेके लिये नहीं है, उसके पास एक ऐसा अनुपम तथा अक्षय कोष होता है, जो धनवानों और शक्तिमानोंके पास नहीं होता। वह अक्षय कोष है—सेवा और सहानुभूति! प्रेम और स्नेह! दया और करुणा! धन और शक्तिका कोष समाप्त हो सकता है, उसमें कमी आ सकती है, पर अपनी सेवा और सहानुभूतिको दिन-रात कितना ही क्यों न बाँटा जाय, वह रत्तीभर भी नहीं घटती।

विराट्-दर्शन

(लेखक—श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)

वर्षाकाल, ठंडी तेज हवा चल रही हो, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर ही बादलोंके द्वारा वर्षाकी बूँदें बन पृथ्वीपर अवतरित हो रहा है, जिसके सम्पर्कसे सभी जगह हरियाली-ही-हरियाली हो गयी, अभी वर्षा होते हुए दस दिन भी नहीं हुए कि पर्वतों और भूमिपर सभी जगह हरी-हरी घास उग आयी है। यह घास ऐसी प्रतीत होती है कि जैसे ईश्वरने हरे रंगका जीवोंके लिये गलीचा बिछा दिया हो।

किसानोंने चावलोंकी खेतीके लिये रोप लगा दिये हैं, जिसको निकालकर खेतोंमें लगा देंगे और एक-एक चावलके दानेसे सैकड़ों दाने पैदा हो जायँगे। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही ईश्वर 'एकोऽहं बहु स्याम्।' चावलके रूपमें प्रकट हो रहा है। पर्वतोंके अंदर हरियाली इस बातकी सूचक है कि कण-कणमें ईश्वर व्यापक है। यदि वह व्याप्त न होता तो ऐसी हरियालीमें उसका प्रादुर्भाव कैसे होता? हरियाली कोई मनुष्यकृत तो है नहीं, वर्षाकालमें यह स्वयं ही भूमिमेंसे प्रकट हो जाती है। इससे और अधिक ईश्वरकी व्यापकताका क्या प्रमाण हो सकता है? दो पहाड़ियोंके बीच ठंडी-ठंडी हवा बड़ी तेजीसे चल रही है, कभी-कभी वह हवा पानीसे तर होती है कि ईश्वर ही प्रेममें आकर हमारे गालोंको एवं हमारे सारे शरीरको स्पर्श कर रहा है। हवामें भरी हुई ऑक्सीजन, मनुष्य जब साँसके द्वारा अंदर लेता है, तो उसके खूनके विकार जाते रहते हैं और रक्त-प्रवाह बढ़ जाता है। ईश्वर आक्सीजन बन हमारे अंदर प्रविष्ट हो, हमारे रक्तका संचार करता है।

वृक्षकी पत्तियाँ, टहनियाँ लहरा रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर ही आनन्दोल्लासमें स्वयं नाच रहा हो। फूल निकल रहे हैं और सारी ही पृथ्वी रमणीक और सजी हुई लगती है, मनको आकर्षित करती है, ईश्वर ही फूलोंके रूपमें प्रकट हो रहा है, ईश्वर ही सुगन्धि बनकर फूलोंमें निवास करता है तथा वायुके साथ दूर-दूरतक जाकर सौरभ फैला देता है और ईश्वरकी ही कोमलता फूलोंमें प्रतीत होती है। ईश्वरका विराट् दर्शन हमें कण-कणमें फूल-डाली, वृक्ष-पौधे, घास-तृण, चलती हुई हवामें हो रहा है; किंतु यदि हम ही आँखें बंद कर लें और उसे नहीं देखें तो यह दोष किसका है?

सांसारिक विचारोंमें खोये हुए मनुष्य ईश्वरके इस विराट्रूपके दर्शन कर ही नहीं पाते। वे अपने ही ताने-बानेकी उधेड़-बुन करते रहते हैं। कुछ बननेकी चेष्टा हमें, हम जो हैं, उससे भी वञ्चित कर देती है। मनुष्यके मनके अंदर चलती हुई विचार-धारा, भूतकालकी स्मृतियाँ और भविष्यकी चिन्ताएँ, उसे वर्तमानमें जीने ही नहीं देतीं। ईश्वरके विराट्-रूपके दर्शन वही कर सकता है, जो वर्तमानमें जीता है, जिसे भूतकालका चिन्तन एवं भविष्यकी चिन्ता नहीं। ऐसे मनुष्यका देखना ही सही देखना है। वह केवल देखता ही है और अपने संस्कारोंको उसके साथ नहीं मिलाता; इसलिये उसका देखना शुद्ध है। जो लोग अपने संस्कारोंको मिलाकर देखते हैं, उनका देखना विकृत है। जैसे हम किसी फूलको देख रहे हैं। हम उसे

केवल देख ही रहे हैं। देखते समय हमारे मनमें किसी प्रकारका विचार नहीं उठता। हम समग्र ध्यानसे उस फूलको देखते हैं, तो हमारा देखना, मनको निर्विचार बनानेका एक हेतु हो जाता है। ये बातें बहुत साधारण-सी लगती हैं, किंतु मनुष्यके जीवनमें ये बहुत महत्त्व रखती हैं। जब हम फूलको देखते हैं, तो हमारे मनमें कई प्रकारके विचार उभरते हैं—जैसे हम इस फूलको तोड़ लें, माली देखेगा तो बगीचेसे बाहर निकाल देगा, फूलको तोड़ नाकसे लगा उसकी सुगन्ध लें, हम उसके रूप—कोमलता इत्यादिका तो अनुभव कर नहीं रहे, किंतु मनके अंदर विकार पहले ही शुरू हो जाते हैं कि हम किस प्रकारसे इसे अपना बना लें। यही मनुष्यकी परिच्छिन्न वृत्ति है।

जिस वस्तुका सम्पर्क जिस भी प्रकारसे होता है, वह परिच्छिन्न दृष्टि होनेके कारण परिच्छिन्नतामें ही परिवर्तित हो जाती है। उसकी समग्रताका अनुभव नहीं होता। हम नाम-रूपको जो देख रहे हैं, वह भी संस्कारोंको मिलाकर, परंतु उसमें अस्ति-भाति, जो कि उसका कारण है, जिससे वह भान हो रहा है एवं प्रिय लग रहा है, उसकी ओर ध्यान न होनेके कारण वह फूल स्वार्थसिद्धिका कारण बन जाता है। यह सब फूल बाग-बगीचे, ईश्वर-सृष्टिका शृङ्गार हैं; यह उसकी ही विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्ति है। इस बातका हम अनुभव नहीं करते।

लताएँ बढ़ती हैं, वे अपनेको स्वयं ही आश्रय ढूँढ़कर चलती हैं, उससे वे जरा भी इधर-उधर नहीं होतीं। इसी प्रकार मनुष्यका आधार परमात्मा है। यदि हम उसी आधारपर बढ़ते चले जायँगे, तो हमारा जीवन उन्नत होता चला जायगा। जब ठंडी-ठंडी हवा हमारे गालोंके साथ स्पर्श करती है, तो हम उसकी कोमल अँगुलियोंका स्पर्श हवाद्वारा अनुभव करें, तो मनुष्य कितना आनन्द-गद्गद हो जाय। कदम-कदमपर ईश्वरकी ही कृपा मिलेगी; क्योंकि प्रकृति सब जगहपर ईश्वरकी ही कृपा है, प्रकृति ईश्वरसे भिन्न नहीं, ईश्वर ही प्रकृतिके रूपमें पृथ्वीपर प्रकट है। यदि हम इस बातको समझ लें, तो पेड़-पौधोंमें, फूल-पत्तोंमें, धरतीके कण-कणमें ईश्वरकी अभिव्यक्ति ही प्रतीत होगी।

ईश्वर तो टकटकी लगाये देख रहा है कि मेरा भक्त मेरी ओर देखे; किंतु भक्त बेचारा इतना व्यस्त है, इतना घिरा हुआ एवं तल्लीन है कि वह आँख उठाकर देखता ही नहीं। जब जीव उसकी ओर देखता ही नहीं, तो वह नजर कैसे आये? जैसे कतारमें दस आदमी खड़े हों और एक आदमीकी ओर हमारा आकर्षण—खिंचाव हो, तो हम उसीको देखते हैं। बाकी वे नौ आदमी सामने खड़े होनेपर भी एवं सामने दिखायी देनेपर भी दिखायी नहीं देते।

साधना-कुटीरमें एक तालाब है। वर्षाके दिनोंमें उसमें पड़ती हुई वर्षाकी बूँदें अपना-अपना दायरा बना लेती हैं। यदि वे पानीकी बूँदें अपने आपको बड़ा दायरा समझ, उसीमें परिमित हो जायँ तो यह उनकी भूल होगी; क्योंकि हरेक दायरा अनन्तताकी ओर विकसित हो रहा है। पानीमें फेंके हुए कंकरके दायरे बन जाते हैं; किंतु वे दायरे जबतक किनारेपर नहीं पहुँच जाते, शान्त नहीं होते; इसलिये हर लहरका उठना, उसकी अनन्ततामें लीन होना है।

मनुष्यकी दृष्टि मुख्यतः क्या देख रही है, इसपर मनुष्यका देखना आधारित है। अगर हम प्रकृतिको, वह जैसी है, उसी तरह देखें; एवं अपने संस्कार-विकार उसके साथ-साथ न मिलावें, तो हमें प्रकृतिके अंदर परमात्माके विराट् दर्शन होंगे।

सर्वत्र तुम ही

अवनि, अनिल, जल, अनल, सकल आकाश भरे तुम पूर्णानन्द।
जिधर दृष्टि जाती, दिखते सर्वत्र हँस रहे तुम स्वच्छन्द॥
वृक्षोंके पत्ते-पत्तेसे बहा रहे तुम आनंदस्रोत।
रूप-सुगन्ध बने रहते तुम पुष्प-पुष्पमें ओत-प्रोत॥
तुम ही मधुर नृत्य करते हो बने विचित्र पक्षधर मोर।
शशि बन ज्योति-सुधा बरसाते नित तुम ही आनन्दविभोर॥
नित्य सत्य आनन्द पूर्ण, नित निर्मल तमहर दिव्य प्रकाश।
तुम सर्वत्र कर रहे लीला, नित्य चल रहा आत्मविलास॥

श्रीराधा-माधव-तत्त्व

[एक आध्यात्मिक दृष्टि]

(लेखक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी)

श्रीराधातत्त्वको ठीकसे समझनेके लिये इसके तीनों भावोंको समझना ठीक होगा। आध्यात्मिक दृष्टिसे जिसे योगमाया कहते हैं, आधिदैविक दृष्टिमें वही महामाया है तथा आधिभौतिक रूपमें माया। योगमाया भगवान्‌की अनिर्वचनीय आह्लादिनी शक्ति है। वेदान्तके मतसे योगमायायुक्त भगवान् ही ब्रह्म नामसे अभिहित होते हैं। लीलारसका आस्वादन भगवान् योगमायाके द्वारा ही करते हैं। इसीको महर्षि बादरायणने ब्रह्मसूत्रमें 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' सूत्रमें अभिव्यक्त किया है। रासपञ्चाध्यायीके प्रारम्भमें भी इसका निर्देश भगवान् वेदव्यासने किया है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भागवत १० । २९ । १)

योगमाया ही भगवान्‌का वैशिष्ट्य है, भगवान्‌का सारा ऐश्वर्य योगमायाको ही लेकर है। भगवान् लीलामय हैं, योगमाया उनकी सारी लीलाकी प्रेरणा-शक्ति है। योगमायाके द्वारा ही अव्याकृत ब्रह्म नाम-रूपसे व्याकृत होता है, निर्गुणसे सगुण बनता है और योगमायाके द्वारा प्रदर्शित लीलाका द्रष्टा बनता है।

आधिदैविक सृष्टिमें वही योगमाया महामायाके रूपमें अभिव्यक्त होती है। योगमाया सत्त्वगुणविशिष्टा है और महामाया रजोगुणविशिष्टा। वह महाशक्तिस्वरूपा है। वह सर्वस्वरूपा है, सर्वेश्वरी है, सर्वशक्तिसमन्विता है। भयसे त्राण करनेवाली है। अतएव देवासुर-संग्राममें जब असुर विजयी होकर प्रबल होते हैं तो वह महाशक्ति दुर्गारूपमें अवतीर्ण होकर असुरोंका संहार करती है। रजोगुणविशिष्टा होनेके कारण वही ज्ञानी पुरुषके चित्तको भी मोहग्रस्त कर देती है। आराधना करनेपर वह प्रसन्न होकर भक्तके दुःखोंका निवारण करती है और उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण करती है।

आधिभौतिक सृष्टिमें वही योगमाया महामाया होते हुए मायास्वरूप बन जाती है। तमोगुणविशिष्टा होनेके कारण मायाशक्ति जीवको अविद्याके अन्धकारसे आवृत कर देती है। विशिष्टा कहनेका अभिप्राय यह है कि तत्त्वतः योगमाया, महामाया और माया—तीनों ही भगवान्‌की प्रकृतिकी अभिव्यक्ति है, और वह प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें वह अव्यक्त रहती है। अव्यक्तावस्थामें सृष्टि नहीं रहती। जब इन गुणोंमें भगवान्‌की इच्छासे वैषम्य उत्पन्न होता है तो प्रकृति अव्यक्तावस्थासे व्यक्तावस्थामें आती है और यह सारी विश्वलीला होने लगती है। अपने शुभाशुभ कर्मोंके संस्कारके वश जीव इस लीलामें सुख-दुःख भोगता रहता है। वस्तुतः यह सब कुछ मायाका खेल है। मायासे छुटकारा मिले बिना जीव इस सुख-दुःखके चक्करसे मुक्त नहीं हो सकता। भगवान्‌ने स्वयं श्रीमुखसे कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७ । १४)

शिष्य—गुरुजी! मायासे जीव ग्रस्त है। मायाका स्वरूप क्या है?

गुरु—माया अनिर्वचनीय है, इसके स्वरूपको कोई बतला नहीं सकता। हाँ, इस मायाके कारण जीव अविद्याग्रस्त होता है और अविद्याके कारण ही वह स्वरूपको भूलकर संसार-चक्रमें भ्रमण करता हुआ दुःख भोगता रहता है। अतएव अविद्यारूपी कार्यसे मायारूपी कारणका अनुमान होता है।

शिष्य—गुरुजी! अविद्या क्या है? विद्याके अभावको अविद्या कहते हैं, तो अभावमें किसी कार्यके करनेकी शक्ति कैसे आ सकती है?

गुरु—अविद्या अभावरूप नहीं है, वह भावरूप है। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें इसका लक्षण बतलाया है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

'अनित्य जीवन-जगत् नित्य-सा जान पड़ना, मल-मूत्र, मांस-रक्त-अस्थि आदि अपवित्र वस्तुओंके संघात मानव-शरीरमें पवित्र भावना, दुःखमय जगत्‌में सुखकी भावना

तथा शरीर-इन्द्रिय आदि अनात्म वस्तुमें आत्मभावना अविद्या कहलाती है।'

शिष्य—गुरुजी ! यह विपरीत ख्यातिवाली अविद्या मायाका कार्यरूप है, तो क्या यह अविद्या भी त्रिगुणात्मिका है ?

गुरु—हाँ, अविद्या भी त्रिगुणमयी है। जब यह सत्त्वविशिष्ट होती है तो अनित्यमें कभी-कभी नित्यकी झलक आ जाती है, रजोविशिष्ट अविद्या कार्यरत करती है और तमोविशिष्ट अविद्या मूढ़ बना देती है और जीव अनाचारके गर्तमें गिर जाता है। अविद्याकृत सारी चेष्टाएँ मायाके खेल हैं।

शिष्य—क्या माया और प्रकृति एक ही वस्तु है ?

गुरु—हाँ, एक ही वस्तु है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (४।१०) में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

माया प्रकृति है। मायापति महेश्वर सब भूतोंके हृदयमें स्थित होकर उनको यन्त्रवत् चला रहे हैं।

श्रीमाधव-तत्त्व

मायायाः रमायाः धवः लक्ष्मीपतिः श्रीमाधवः।

सविशेष ब्रह्म ही विष्णु भगवान् हैं। वही श्रीमाधव हैं। शक्ति-समन्वित शक्तिमान् ही श्रीमाधव-तत्त्व है। शक्तिमान्से पृथक् शक्ति नहीं और शक्ति-विहीन शक्तिमान् नहीं। अतएव श्रीराधा-माधव तत्त्वका नित्य संयोग है। शक्तिमान्की सारी लीलाएँ शक्तिके द्वारा ही अभिनीत होती हैं। शक्तिमान् श्रीमाधवकी शक्तिरूपा श्रीराधा सर्वमयी हैं, सर्वस्वरूपा हैं; सर्वशक्तिसमन्विता हैं। श्रीमाधवका, भगवान्का सारा ऐश्वर्यभाव श्रीराधाको लेकर है।

निर्विशेष ब्रह्मका निर्विशेषत्व श्रीमाधवमें, श्रीभगवान्में अक्षुण्णरूपसे विद्यमान रहता है। योगमाया श्रीराधाके संयोगसे वह निर्विशेष ब्रह्म सविशेष बनता है।

शिष्य—गुरुजी ! निर्विशेष-सविशेषको जरा स्पष्टरूपसे समझाइये।

गुरु—ब्रह्मकी निर्विशेषता और सविशेषताका उल्लेख उपनिषदोंमें मिलता है। ब्रह्मसूत्रके अपने श्रीभाष्यमें श्रीरामानुजाचार्य कहते हैं—"**परब्रह्म हि कारणावस्थं कार्यावस्थं सूक्ष्मस्थूलचिदचिद्वस्तु शरीरतया सर्वदा सर्वात्मभूतम्।** (१।२।१ ब्रह्मसूत्र श्रीभाष्य)—अर्थात् परमब्रह्म द्विविधभावापन्न है, कारणावस्थ और कार्यावस्थ है। कारणावस्थापन्न ब्रह्ममें सूक्ष्मावस्थाको प्राप्त प्रकृति और पुरुष उसके शरीर होते हैं। इसी कारण ब्रह्मको विशिष्टाद्वैतवादी चिदचिद्विशिष्ट मानते हैं। अतएव ब्रह्म सर्वदा ही सबकी आत्माके रूपमें अवस्थित है। सूक्ष्मावस्थाको प्राप्त प्रकृति और पुरुष प्रलयकालमें ब्रह्ममें विलीन हो जाते हैं। परंतु उनके स्वरूपकी निवृत्ति नहीं होती; क्योंकि प्रकृति और पुरुष भी ब्रह्मके समान अनादि हैं। अतएव सूक्ष्मावस्थाको आपन्न प्रकृति और पुरुषके साथ-साथ ब्रह्म जगत्का कारण है। सविशेषवादी इस प्रकार ब्रह्मको चिदचिद्विशिष्ट मानते हैं। उनके मतसे ब्रह्मके साथ-साथ प्रकृति और पुरुष अर्थात् जीव भी नित्य हैं। इनका कभी अपलाप नहीं होता।

श्रुति भी कहती है कि '**तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्। नामरूपाभ्यां व्याक्रियते।**' अर्थात् प्रलयकालमें जगत् अव्याकृत अवस्थामें रहता है, वही पीछे सृष्टिकालमें नामरूपके द्वारा व्यक्त होता है। ब्रह्मसूत्रमें कहते हैं—'**जन्माद्यस्य यतः।**' (१।१।२) अर्थात् इस नामरूपद्वारा व्याकृत जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिससे होता है वही ब्रह्म है। इसीको उपनिषद्में सुस्पष्टरूपसे कहा है—'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म।**' 'जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे जीवन धारण करते हैं, जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसको तुम जानो, वह ब्रह्म है।'

श्वेताश्वतर उपनिषद्में तो इस विषयको स्पष्टरूपसे खोलकर कह दिया है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥
(श्वेता० १।९)

'ज्ञ और अज्ञ, अर्थात् जीव और प्रकृति—दोनों अजन्मा हैं। एक ईश अर्थात् चेतन है और दूसरा अनीश अर्थात् अचेतन है और एक अज शाश्वत तत्त्व है जो भोक्ता अर्थात् जीव और भोगार्थ अर्थात् प्रकृतिसे युक्त है, वह अनन्त

आत्मा है, विश्वरूप है और अकर्त्ता है। इन तीनोंका समावेश ब्रह्मके अन्तर्गत होता है।'

इस प्रकार विशिष्टाद्वैतका प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं। गीतासे भी इस सिद्धान्तका समर्थन होता है। श्रीभगवान्‌ने स्पष्ट कहा है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥
(गीता ७। ५-६)

विशिष्टाद्वैत कल्याण-गुण-युक्त भगवान् वासुदेवको ही परब्रह्म मानता है, वही चतुर्दश भुवनरूपी अखिल सृष्टिके उपादानकारण हैं, कर्त्ता हैं तथा अन्तर्यामीरूपसे जीवोंके नियामक हैं।

यथा—

वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः।
भुवनानामुपादानं कर्त्ता जीवनियामकः॥

भगवान् वासुदेव ही श्रीमाधव-तत्त्व हैं। परंतु वे सविशेष परब्रह्म हैं। उनका सविशेषत्व श्रीराधातत्त्वके कारण है। जिस प्रकार गुण गुणीसे भिन्न नहीं, विशेषण विशेष्यसे पृथक् नहीं, शक्ति शक्तिमान्‌से अलग नहीं, उसी प्रकार श्रीराधातत्त्व-श्रीमाधवतत्त्वमें अविनाभावसम्बन्ध है। परंतु परमार्थतः अभेद होते हुए भी व्यवहारमें भेद है, लीलामें भेद है।

शिष्य—गुरुजी! निर्विशेष ब्रह्मसे क्या अभिप्राय है?

गुरु—श्रुतिका अनुशीलन करनेपर ब्रह्मके विषयमें दो प्रकारके भाव देखनेमें आते हैं; एक सविशेष अथवा सगुण और दूसरा निर्विशेष अर्थात् निर्गुण। ऊपर बतला चुके हैं कि सविशेषवादी ब्रह्मको प्रकृति और जीवसे विशिष्ट मानते हैं, ब्रह्मके साथ-साथ प्रकृति और जीव भी अनादि और नित्य हैं। श्रीरामानुजस्वामी ब्रह्मको सब दोषोंसे मुक्त तथा सारे कल्याणकारी गुणोंसे युक्त मानते हैं। वे श्रीभाष्य (३।२।११) में लिखते हैं—

तथा—

'यतः सर्वत्र श्रुतिस्मृतिषु परं ब्रह्मोभयलिङ्गमुभयलक्षणमभिधीयते। निरस्तनिखिलदोषत्वकल्याणगुणाकरत्वलक्षणोपेतमित्यर्थः॥

तथा—

'एष आत्माऽपहतपाप्मा। 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

—आदि श्रुतियाँ भी इस बातका समर्थन करती हैं। परंतु प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके वह परे है।

अथवा जब प्रकृति उनकी है, तब प्रकृतिके गुण भी उनके ही हैं। प्रकृति और प्रकृतिके गुणको दूसरे शब्दोंमें माया और मायाकी कृति कह सकते हैं। गीतामें भी भगवान् कहते हैं—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥
(७। १२)

अथवा—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
(९। १०)

श्रीभगवान्‌की अध्यक्षतामें ही प्रकृति चराचर विश्वको उत्पन्न करती है। अतएव अन्ततोगत्वा श्रीभगवान् ही कर्ता-धर्ता-संहर्ता सब कुछ हैं। अर्थात् सारे गुण उन्हींके हैं। इसके अतिरिक्त भक्तवात्सल्य, पतितपावनत्व, साधुजनका परित्राण, दुष्टोंका संहार आदि अनेक गुण प्रभुके हैं। सर्वोपरि उनका गुण है—परम रसिकत्व; क्योंकि श्रुति कहती है—

'रसो वै सः। रसꣳह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।'

वे रसरूप हैं, रसको प्राप्त कर ही वे आनन्दी होते हैं। 'रस एव रासः'—रस ही रास है। अतएव रासलीला उनका परम और चरम गुण है। इसी रासलीलाको लेकर उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा एकसे अनेक बनती हैं—और अनेकसे संयुक्त होकर प्रभु रास रचाते हैं। परंतु यह सारा रस, यह सारी रासलीला उनकी आह्लादिका शक्ति, योगमाया श्रीराधिकाका भ्रूकुटि-विलास है। अतएव समस्त कर्तृत्वादि विधान श्रीराधाका मनोराज्य है। वे सर्वशक्तिमती हैं, सर्वस्वरूपा हैं। उन्हींके कारण भगवान्‌में, श्रीमाधवतत्त्वमें सगुणत्वका आरोप होता है।

शिष्य—गुरुजी! यह तो सविशेष ब्रह्मकी बात हुई। निर्विशेषकी बात तो अभी शेष ही रह गयी।

गुरु—हाँ, बात तो ऐसी ही है। वस्तुतः कथोपकथन' तत्त्वचिन्तन, चर्चा आदि सविशेष, सगुण ब्रह्मकी ही होती

है। जो निर्गुण है, निर्विशेष है, उसके विषयमें क्या कहा जाय? तथापि श्रुतिमें यत्र-तत्र कुछ संकेत किया है। माण्डूक्य-कारिकामें लिखा है—

अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा॥
(१।१६)

'अनादि मायाके वशमें सोया हुआ जीव जब जागता है, आत्मज्ञानको प्राप्त होता है, तब वह जान पाता है कि वह अज है, निद्रा और स्वप्नसे मुक्त है और अद्वैत ब्रह्मस्वरूप है।' बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है—

'अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्।' (३।८।८)

अर्थात् वह न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न ह्रस्व है, न दीर्घ है।

तथा—

'तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्।

अर्थात् ब्रह्मके पूर्व—परे, भीतर और बाहर कुछ भी नहीं है।

छान्दोग्य उपनिषद्में कहते हैं—

'आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वम्।'
(७।२५।२)

'आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा पीछे है, आत्मा आगे है, आत्मा दक्षिण है, आत्मा उत्तर है, आत्मा ही यह सब है।'

यहाँ ब्रह्मके विषयमें दो प्रकारके विचार आये हैं—(१) उसके सिवा और कुछ नहीं है। (२) ब्रह्म ही सब कुछ है। वह अणु-से-अणु है और महान्-से-महान् है।

'अणोरणीयान् महतो महीयान्।' (कठ० १।२।२०)

वह नित्योंमें नित्य है और चेतनोंमें चेतन है—

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्। इति।
(कठ० २।५।१३)

आदिमें एक सद्ब्रह्म ही विद्यमान था—

'सदेव सोम्य इदमग्र आसीद् एकमेवाद्वितीयम्।'
(छान्दो० ६।२।१)

उसको एकसे अनेक हो जानेकी इच्छा हुई।

'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति'। (छान्दो० ६।२।३)

ऐतरेय उपनिषद्में भी लिखा है कि पहले आत्मा ही था और कुछ नहीं था। उसकी इच्छा हुई कि लोकोंकी सृष्टि करूँ और उसने इन लोकोंकी सृष्टि की। उसने देवताओं-की सृष्टि की। यथा—

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमाँल्लोकानसृजत।××स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति। ××ता एता देवताः सृष्टा××' (ऐतरेयोपनिषद् १।१।२, ३,-१।२।१)

अतएव श्रुति कहती है—

'तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि।'

अर्थात् जीव (आत्मा) और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार निर्विशेषवादमें ब्रह्मसे पृथक् जीवकी सत्ताका अपलाप हो गया। अब रह गयी प्रकृति। वह कोई विशेष तत्त्व नहीं है। कुछ लोग जगत्की सत्ताको स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। परंतु मिथ्या उसको कहते हैं जिसकी प्रतीतिका बाध हो जाता है। जगत्की तो अबाध प्रतीति होती है, अतएव इसे मिथ्या कैसे कह सकते हैं? तो क्या जगत्की ब्रह्मसे पृथक् सत्ता है? नहीं। महर्षि बादरायण ब्रह्मसूत्रमें कहते हैं—

'तदनन्यत्वम् आरम्भणशब्दादिभ्यः।' (२।१।१४)

जगत् ब्रह्मसे पृथक् नहीं है; क्योंकि श्रुतिमें आरम्भण शब्दके द्वारा ऐसा विचार प्रकट किया गया है। जैसे—

'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।'
(छान्दो० ६।४)

जैसे एक मृत्पिण्डको जाननेसे सारे मृण्मय पदार्थ जाने जाते हैं, क्योंकि मृत् (मिट्टी) से निर्मित घट, शराव आदि विकार जगत्में केवल नामका भेद होता है, तत्वतः सब मृद् (मिट्टी) ही होते हैं। उसी प्रकार यह नाना रूप जगत् तत्त्वतः ब्रह्मसे पृथक् नहीं है, केवल नाम-रूपका भेद है। अन्यत्र, छान्दोग्योपनिषद् (३।१४।१)में इसी तथ्यका प्रतिपादन दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार किया गया है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।'

निश्चयपूर्वक यह सब जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे ही यह उत्पन्न होता है और ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है तथा ब्रह्ममें ही साँस ले रहा है, जीवन धारण कर रहा है।

शिष्य—गुरुजी ! तब तो जगत् ब्रह्मका विकार हो गया और ब्रह्ममें परिणामी होनेका दोष आ गया ?

गुरु—नहीं, ऐसी बात नहीं है। श्रुति कहती है—

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

(पुरुषसूक्त शु० यजु० ३१ । २-३)

'यह सारा जगत्, जो हुआ है और जो सब पुरुष ही है और इस भोगमय जगत्के परे भी वह अमृतत्वका स्वामी है। यह दृश्यादृश्य जगत् उसकी महिमा है, वह पुरुष इससे अत्यन्त महान् है। यह सारा विश्व उसके एक पादमें स्थित है, उसका त्रिपाद अमृतमय द्युलोकमें है।'

शिष्य—गुरुजी ! निर्विशेष ब्रह्मके विषयमें और कुछ बतलाइये। क्या पुरुषसूक्तका यह पुरुष और सांख्यका पुरुष एक ही तत्त्व है ?

गुरु—तैत्तिरीय उपनिषद्में लिखा है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (३ । १)

अर्थात् जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं, जिसके द्वारा ये उत्पन्न हुए जीवन धारण करते हैं और अन्तमें जिसमें जाकर विलीन हो जाते हैं, वह ब्रह्म है। यह ब्रह्मका अद्वैतभाव बोध करनेवाला वाक्य है। इसका अभिप्राय यही है कि ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अतएव आत्मासे अतिरिक्त जो जगत्की प्रतीति पृथक्रूपमें हो रही है, वह केवल अध्यासमात्र है, पृथक् कोई तत्त्व नहीं है, तथापि मान हो रहा है, यही अध्यास कहलाता है। अतएव प्रकृतिको विशेष तत्त्व मानकर प्रकृतिविशिष्ट ब्रह्मको प्रतिपादन करना निर्विशेषवादीको अभिप्रेत नहीं है। ब्रह्मसूत्रके 'तथान्यप्रतिषेधात्।' (३ । २ । ३६) इस सूत्रके भाष्यमें श्रीशंकराचार्य कहते हैं—

तथान्यप्रतिषेधादपि न ब्रह्मणः परं वस्त्वन्तरमस्ति इति गम्यते।×××'ब्रह्मैवेदं सर्वम्, 'आत्मैवेदं सर्वम्' 'नेह नानास्ति किंचन यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्'—'इत्येवमादीनि वाक्यानि स्वप्रकरणस्थानि अन्यार्थत्वेन परिणेतुमशक्यमानानि ब्रह्मव्यतिरिक्तं वस्त्वन्तरं वारयन्ति ॥'

अर्थात्—

'तथान्यप्रतिषेधात्'—इस सूत्रसे भी ब्रह्मसे परे किसी दूसरी वस्तुकी सत्ता नहीं है, यही प्रतीत होता है।

'ब्रह्मैवेदं सर्वम्, आत्मैवेदं सर्वम्, नेह नानास्ति किञ्चन, यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्'—इन श्रुति-वाक्योंको, जो इस प्रकरणका समर्थन करते हैं, अन्य अर्थमें परिणत करना अशक्य है। ये ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरी वस्तुके अस्तित्वका निषेध करते हैं।

यद्यपि निर्विशेष होनेके कारण ब्रह्मका लक्षण नहीं किया जा सकता, तथापि अनुमानका आश्रय लेकर श्रुतिमें 'तटस्थ' और 'स्वरूप' लक्षणके भेदसे दो प्रकारके लक्षण प्राप्त होते हैं—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'— (तैत्तिरीय २ । १ । १)

तथा—

'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।' —(बृहदारण्यक ३ । ९ । २८)

ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। ब्रह्म विज्ञानरूप और आनन्दरूप है। यह ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है। तथा।—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तैत्तिरीय० ३ । १)

यह श्रुति ब्रह्मका तटस्थ लक्षण करती है। तथापि ब्रह्मके यथार्थ स्वरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह बुद्धि, मन और वाणीकी पहुँचसे परे है।

दूसरा प्रश्न है—पुरुषसूक्तके पुरुष और सांख्यके पुरुषके विषयमें। सांख्यका पुरुष अकर्ता है, द्रष्टा मात्र है, असंख्य है, प्रकृतिके बन्धनमें है, विवेकी है, कूटस्थ है, अज है, उससे कुछ विकार या परिणाम नहीं होता, चेतन है। पुरुषसूक्तका पुरुष एक और अद्वितीय है। यह जगत् उसकी ही महिमासे उसीके एक देशमें व्यक्त हो रहा है और उससे पृथक् नहीं है। यही पुरुष वेदान्तका एकम् द्वितीयं ब्रह्म—है, यही भगवान् है, यही नारायण है। नारायणोपनिषद् (१) में लिखा है—

'ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत। प्रजाः सृजेयेति। नारायणात्प्राणो जायते। मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। नारायणाद्ब्रह्मा जायते। नारायणाद्रुद्रो जायते। नारायणादिन्द्रो जायते। नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते। नारायणाद्द्वादशादित्या रुद्रा वसवः सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते। नारायणात्प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते।'

अर्थात् 'निश्चयपूर्वक पुरुषरूप नारायणने कामना की कि प्रजाकी सृष्टि करूँ। नारायणसे प्राण, मन, सारी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, ज्योति अर्थात् अग्नि, जल और सबको धारण करनेवाली पृथिवी उत्पन्न हुई। नारायणसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, रुद्र उत्पन्न हुए, इन्द्र उत्पन्न हुए। नारायणसे प्रजापति उत्पन्न हुए, नारायणसे द्वादश आदित्य, रुद्र, वसु, सारे वेद उत्पन्न हुए। नारायणके द्वारा ही वे प्रवर्तित होते हैं और नारायणमें ही प्रलीन हो जाते हैं।'—यहाँ नारायण, विष्णु, भगवान्, माधव आदि शब्द एकार्थवाची हैं।

शिष्य—गुरुजी! 'नारायणोऽकामयत।' 'सोऽकामयत'—आदि श्रुति-वाक्यके द्वारा जो कामना उत्पन्न होनेकी बात कही गयी है, उसका क्या कारण है?

गुरु—यह कामना आह्लादिनी शक्तिके कारण होती है। शक्तिमान् नारायण श्रीभगवान्में यह आह्लादिनी शक्ति अविनाभाव-सम्बन्धमें रहती है। इस कामनारूपी आह्लादिनी शक्तिके उन्मेष होनेपर ब्रह्म सगुण हो जाता है और वह नारायण भगवान् आदि शब्दोंके द्वारा अभिहित होता है। इसके पूर्व वह निर्गुण रहता है।

शिष्य—गुरुजी! तब तो ब्रह्ममें विरोधी गुणोंका आरोप होता है। क्या यह ठीक है? क्या एक ही व्यक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका होना सम्भव है?

गुरु—अवश्य, ब्रह्मके विषयमें जब निर्विशेष और सविशेष दोनों प्रकारकी श्रुतियाँ प्राप्त हैं तो वह वैसा ही है। श्रीमद्भागवत ७।९।४८ में प्रह्लादजी कहते हैं—

सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनो वचसा निरुक्तम्॥

'हे भूमन्! तुम ही सगुण-निर्गुण सब कुछ हो। यहाँतक कि मन और वाणीसे जिसका निर्वचन होता है, वह तुमसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'—वस्तुतः जो मन-वाणीके परे है, वही निर्विशेष कहा जाता है और जो मन-वाणीके द्वारा निर्वचनका विषय है, वह सविशेष ब्रह्म है। श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र लिखा है—

नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम्।
गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः॥
(२।६।३०)

'सृष्टिके आदिमें भगवान् नारायण स्वभावतः निर्गुण रहते हैं। यह जगत् उनके भीतर निहित रहता है। जब माया-युक्त होते हैं तब वे सगुण हो जाते हैं।'—यह शास्त्रवचन बिल्कुल ठीक है।

शिष्य—गुरुजी! तब तो ब्रह्म परिणामी हो जाता है?

गुरु—हाँ, परिणामी-अपरिणामी दोनों है। पुरुषसूक्तमें लिखा है—

'एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः।'

—यह जगत् उसकी महिमामें अवस्थित है और यह महिमा ही उसके सगुणत्वका द्योतक है; परंतु वह इससे बहुत बड़ा है। वह अव्याकृत है, अमरत्वसे युक्त है। यह नाम-रूपके द्वारा व्याकृत जगत् उससे उत्पन्न होकर संहारको प्राप्त होता है। अतएव यह मर्त्य-संज्ञक है; परंतु यह स्वल्प है और अव्याकृतस्वरूप अमृत है, प्रकाशमय है।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥'

अतएव वह निर्गुण और सगुण दोनों है। सविशेषवाद भी सही है और निर्विशेषवाद भी। वस्तुतः उसके यथार्थ स्वरूपका वर्णन नहीं हो सकता; वह मानवीय बुद्धिके चिन्तनमें नहीं आ सकता। वह सर्वथा अचिन्त्य है। श्रुति कहती है—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥ (मुण्डक० १।१।६)

'जो अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, अवर्ण है, अचक्षु है, अश्रोत्र है, अपाणिपाद है, नित्य, विभु और सर्वव्यापी है, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है, उस अव्यय ब्रह्मको, जो भूतोंकी योनि है, उत्पादक है, धीर पुरुष प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।'—भूतयोनि होनेके कारण वह सविशेष है और अदृश्य-अग्राह्य आदिसे निर्विशेष ज्ञात होता है।

शिष्य—गुरुजी! जीव और ब्रह्ममें कोई भेद मानते हैं और कोई अभेद। वस्तुतः क्या बात है?

गुरु—जीव और ब्रह्ममें भेद भी है और अभेद भी। ब्रह्म मायाधीश है और जीव माया-ग्रस्त है, मायाके अधीन है। यही दोनोंमें भेद है। जीव मायाके वशमें होकर

स्वप्न-जगत्में विचरण करता रहता है। जब वह मोहनिद्रासे जागता है तो—

अनादिमायया सुप्तः यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमद्वैतमस्वप्नं बुध्यते तदा॥

जीव और ब्रह्मकी भेदपरक अनेक श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद्में आता है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
(४।६)

'दो पक्षी साथ-साथ सखाभावसे एक ही वृक्षका सेवन करते हैं, उन दोनोंमें एक तो उसके फलका आस्वादन करता है और दूसरा आस्वादन न करता हुआ केवल देखता रहता है।' इस रूपकमें जीव और ब्रह्म दो पक्षी हैं और प्राकृतिक शरीर वृक्ष है। यह भेद श्रुति है और अभेद श्रुति भी वहीं है, यथा—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः॥

'वह भगवान् सर्वव्यापी, सब भूतोंके हृदय-गुफामें स्थित है, समस्त आनन, सिर और ग्रीवावाला है; अतः सर्वगत है, शिव है।'

श्रीमद्भागवतमें भी अभेदवाद देखनेमें आता है। यथा—

स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते।
योनीनां गुणवैषम्यात् तथात्मा प्रकृतौ स्थितः॥
(३।२८।४३)

'जैसे एक अग्नि आधारकी विभिन्नतासे नानारूपमें प्रतीयमान होती है, उसी प्रकार एक ही आत्मा प्रकृतिमें स्थित होकर योनियोंके गुणोंके वैषम्यके कारण नाना प्रकारका प्रतीत होता है।'

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्में भी आता है—

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥
(११।१२)

इस प्रकार जीव और ब्रह्मके विषयमें भेदाभेदपरक नाना श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं। अतएव यहाँ अचिन्त्य-भेदाभेदवादका सिद्धान्त ही समीचीन जान पड़ता है।

श्रीराधा श्रीभगवान् (श्रीमाधव) की आह्लादिनी शक्ति हैं। जिस प्रकार शक्ति शक्तिमान्से पृथक् नहीं होता, उसी प्रकार श्रीराधा और श्रीमाधवका अविनाभाव नित्य सम्बन्ध है। यही निर्विशेष ब्रह्मका सगुण स्वरूप है। शक्तिमान् श्रीभगवान्की आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा सत्त्वविशिष्टा योगमाया हैं। योगमाया स्वरूपमें श्रीमाधवसे युक्त होकर वह नित्य रास-विलासमें रत रहती हैं। रासपञ्चाध्यायीके प्रथम श्लोकमें श्रीभगवान्के इसी योगमायासमावृत रूपका उल्लेख है। महर्षि वेदव्यासने शिष्टता और अपनी चरम भक्ति-भावनाके कारण श्रीराधाजीका नाम न लेकर योगमाया शब्दका व्यवहार किया है। वस्तुतः श्रीराधामाधवका जो युगल रूप ध्यान-पूजामें व्यवहृत होता आ रहा है, वही श्रीभगवान्का योगमाया-समावृत रूप है। भगवान्के श्रीमुखसे गीता (७। २५) में भी महर्षि वेदव्यासने योगमाया-समावृत इसी रूपका निर्देश कराया है। यथा—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

श्रीभगवान् कहते हैं कि 'मेरे इस योगमाया-समावृत रूपको सब नहीं देख पाते।' वस्तुतः श्रीभगवान्की जिसपर कृपा होती है, वही उनके स्वरूपका दर्शन कर पाता है।

श्रीभगवान्का यह योगमायासमावृत स्वरूप नित्य है, सर्वदा एकरस है। इसी रूपमें आधिदैविक जगत्में उनकी श्रीवृन्दावनलीला होती है। गोलोक, दिव्य श्रीवृन्दावनधाममें प्रभुके अनन्य भक्त इस लीलाका दर्शन करते हैं। आधिभौतिक जगत्में भी यह दिव्यलीला श्रीवृन्दावनमें नित्य होती रहती है। परंतु आधिभौतिक जगत् तमःप्रधान होनेके कारण इहलोकके निवासी उस दिव्यलीलाको नहीं देख पाते। जिनको आराधनाके द्वारा प्रभुकी कृपासे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है, उनको श्रीवृन्दावन-धाममें नित्य रासलीला आज भी दृष्टिगोचर होती है। श्रीवृन्दावनधाममें यह किंवदन्तीके रूपमें सर्वत्र चर्चाका विषय बन गया है।

श्रीराधामाधव-भाव परम दिव्य भाव है और ऊपर जो त्रिविध स्तरमें त्रिविध भावके रूपमें उल्लेख किया गया है, वह वस्तुतः एक है; तथापि अनन्तकालसे अनन्तरूपमें साधकवृन्दके हृदयाकाशमें प्रकाशित होता आ रहा है। यह श्रीभगवान्की सत्त्वविशिष्टा आह्लादिका शक्तिकी लीला है। यही आराधनीया है।

एक ईसाई लाटपादरीका श्रीकृष्ण-स्मरण, प्रार्थनासे रोग-नाश तथा विलक्षण परिवर्तन

[एक बिल्कुल सत्य घटना]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा)

सन् १९६५ फरवरीमें जब मैं पिलखुवा सनातनधर्म-सभाके वार्षिकोत्सवपर पधारनेके लिये प्रार्थना करने दिल्ली भूपेन्द्रभवनमें पहुँचा तो वहाँ मुझे सुप्रसिद्ध सनातनधर्मी हिंदूनेता परम श्रद्धेय श्रीशिवरामसेवकजी, सम्पादक 'वीरभारत'के दर्शन हुए । ये उच्चकोटिके विद्वान् तथा वक्ता हैं और मेरे परम मित्रोंमेंसे हैं । श्रद्धेय श्रीशिवराम-सेवकजीने मुझे देखते ही कहा कि 'अच्छा, भक्त रामशरण-दासजी ! आप आ गये ! मैं तो आज ही आपके पास एक आश्चर्यजनक बिल्कुल सत्य घटना लिखकर भेजनेवाला था । चलो, अब तो आप स्वयं ही आ गये तो उस सत्य घटनाको मुझसे सुनकर लिख लीजिये । भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र नाममें, भगवान् श्रीकृष्णकी प्रार्थनामें कैसा अद्भुत चमत्कार है तथा हिंदू ललनाओंके पवित्र पातिव्रतधर्मकी कितनी महत्ता है, यह इस सत्य घटनासे एकदम सिद्ध हो जाता है ।

'एक ईसाई लाटपादरी, जो सारे हिंदुओंको हिंदूधर्मसे च्युत कर ईसाई बनाने जा रहे थे, स्वयं श्रीकृष्ण-नामके अद्भुत चमत्कारको देखकर और हिंदू ललनाओंके पवित्र पातिव्रतधर्मसे प्रभावित होकर कैसे स्वयं ईसाईसे हिंदूधर्मकी शरणमें आ गये । यही बिल्कुल सत्य घटना मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ ।'

उन्होंने कहा—'भक्त रामशरणदासजी ! मैं सनातनधर्म-प्रतिनिधि-सभा, पंजाबके सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीस्वामी गणेशानन्दजी महाराजके साथ आसामकी ओरसे ईसाइयोंमें सनातन-हिंदूधर्मका प्रचार करता हुआ चला आ रहा हूँ । मुझे आसाम प्रान्तमें सत्य सनातन हिंदूधर्मकी अद्भुत महत्ताको प्रकट करनेवाली एक आश्चर्यजनक सत्य घटनाका पता लगा है । जो इस प्रकार है—

आसामकी पहाड़ियोंमें जब ईसाईमतका बड़ा जोर बढ़ गया और हिंदू अपने पवित्र हिंदूधर्मका परित्याग करके धड़ाधड़ ईसाई बनाये जाने लगे, तब सनातनधर्मके सुप्रसिद्ध नेता भारतभूषण पूज्य महामना पं० श्रीमदनमोहन मालवीयजी महाराजके मनमें बड़ी वेदना हुई और वे सोचने लगे कि ईसाइयोंके भयंकर कुचक्रसे पवित्र हिंदू जातिको कैसे बचाया जाय ? पूज्य महामना पं० श्रीमदनमोहन मालवीयजी महाराज-ने सनातनधर्मके सुप्रसिद्ध महान् विद्वान् पूज्य पं० श्री-लक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी महाराजको, जो इस समय विहार सनातनधर्म प्रतिनिधिसभाके मन्त्री हैं, वहाँपर भेजा कि वे वहाँ रहकर आसाममें ईसाईमतका डट करके मुकाबला करें, हिंदुओंको ईसाई होनेसे बचायें और उनमें सनातन-हिंदूधर्मका प्रचार करें ।

पूज्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी महाराजने वहाँ निरन्तर सात वर्षोंतक रहकर आसामकी पहाड़ियोंमें खूब डटकर काम किया । उन्होंने एक ऐसी योजना बनायी कि नौगाँवमें एक बड़ा भारी विराट हिंदू-सम्मेलन किया जाय और हिंदू-महासभाके महान् तेजस्वी नेता स्वर्गीय माननीय डा० श्री बी० एस० मुंजेको, जो उस समय जीवित थे, इस विराट हिंदू-सम्मेलनका सभापति बनाया जाय ।

पूज्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी महाराज हिंदू-सम्मेलनका प्रचार करनेके तथा हिंदू-सम्मेलनके धन एकत्रित करनेके लिये दौरा करने लगे । जब वे जयन्तियाकी पहाड़ियोंमें पहुँचे तो वहाँ रास्तेमें एक नदी पड़ती थी । किश्ती (नाव) के पार होनेमें बड़ी देर हो गयी और रातके लगभग आठ बज गये । वहाँ अपना कोई भी परिचित व्यक्ति नहीं था, इसलिये एक बड़ी ही विकट समस्या उनके सामने आ गयी । वे सोचने लगे—अब रातको कहाँ जाकर ठहरा जाय ? पहाड़ियोंका रास्ता भी वे जानते नहीं थे । उन्होंने जो अपनी दृष्टि उठाकर देखा तो उन्हें सामने एक लैंप जलता हुआ दिखलायी दिया । बस, फिर क्या था । पूज्य शास्त्रीजी महाराज ठीक उसीकी ओर चल दिये । वहाँ पहुँचकर देखा कि वह ईसाइयोंके एक बहुत बड़े लाटपादरीकी कोठी है । वे लाटपादरी उस समय अपनी उस कोठीके ऊपर बैठे हुए

ये और उन्होंने जब अपनी कोठीपर बैठे हुए सामनेसे एक आदमीको अपनी ही कोठीकी ओर आते देखा तो जोरसे आवाज दी—'कौन हो तुम ?' शास्त्रीजी महाराज अभी चुपचाप ही थे, कुछ बोले नहीं। यह देखकर उन पादरीका पारा बड़ा गरम हो गया और वे गुस्सेमें भरे कोठीसे नीचे उतर आये और शास्त्रीजी महाराजसे ऐसे बड़े ही क्रोधमें भरकर बोले, जैसे कि वे शास्त्रीजी महाराजको खानेके लिये दौड़ते हों! समीप आकर उन्होंने फिर जोरसे आवाज़ दी कि 'तुम बोलते क्यों नहीं हो, तुम कौन हो ?'

जवाब मिला —'पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री ।'

'अमृतबाजार पत्रिका', 'आनन्दबाजार पत्रिका'में तथा और भी कई पत्र-पत्रिकाओंमें पूज्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी महाराजका छायाचित्र और उनका शुभ नाम छप चुका था। चित्रके नीचे छपा हुआ था कि भारतभूषण महामना पं० श्रीमदनमोहन मालवीयजी महाराजके द्वारा आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर आसामकी पहाड़ियोंमें हिंदू-संस्कृतिके प्रचारके लिये भेजा गया है। वे लाटपादरी 'अमृतबाजार पत्रिका', 'आनन्दबाजार पत्रिका' आदिमें पूज्य शास्त्रीजी महाराजका छायाचित्र और उनके सम्बन्धका यह समाचार पढ़ चुके थे और आपके शुभ नामसे भी सुपरिचित हो चुके थे। इसलिये जब उन्होंने सुना कि मेरा नाम 'पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री' है तो झटसे उनका सारा क्रोध बिल्कुल शान्त हो गया और उन्होंने तत्काल अपने सिरका हैट उतारकर एक ओर रख दिया और उन्हें बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। फिर शास्त्रीजी महाराजको दौड़कर अपनी छातीसे लगा लिया तथा बड़ा प्रेम किया। तदनन्तर उन्हें वे तुरंत अपनी कोठीमें ले गये और उनके खानेके लिये उनके सामने फल ला करके रख दिये तथा उनसे उन फलोंको खानेकी करबद्ध प्रार्थना की।

वे लाटपादरी बड़े बुद्धिमान् थे और यह भी भलीभाँति जानते थे कि ये शास्त्रीजी महाराज कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण हैं, उच्चकोटिके महान् विद्वान् हैं। ये विदेशी और विधर्मियोंके हाथोंका कुछ खाना-पीना स्वीकार न करेंगे। इसलिये वे तुरंत शास्त्रीजी महाराजको अपने साथ पासके ही सनातनधर्मके एक देवमन्दिरमें ले गये। देवमन्दिरके पुजारी ब्राह्मणको अपने पाससे रुपये देकर बोले कि 'पुजारीजी महाराज! ये एक बड़े ही उच्चकोटिके विद्वान् ब्राह्मण शास्त्री हैं। आप इन्हें हमारी ओरसे आटा, घी, साग-सब्जी आदि सब सामान लाकर भोजन बनाकर खिलाओ और रात्रिको अपने स्थानपर अपने पास ही ठहराओ। इन्हें अब किसी प्रकारका कोई कष्ट न होने पाये, इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रक्खो।'

पूज्य शास्त्रीजी महाराजको उस ईसाई लाटपादरीका यह अद्भुत प्रेमभाव और अपने प्रति इस प्रकारका आदरभाव देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि 'मैं तो एक कट्टर सनातनधर्मी हिंदू हूँ और ये एक कट्टर हिंदू-द्रोही ईसाई लाटपादरी हैं। ये हिंदुओंको ईसाई बनानेपर तुले हुए हैं और इसके विपरीत मैं इनका घोर विरोधी हूँ तथा इनके बनाये हुए हिंदूसे ईसाइयोंको पुनः हिंदू बनानेवाला हूँ; फिर भी ये मुझे अपना घोर शत्रु न मानकर मुझसे ऐसा अद्भुत प्रेम कैसे करते हैं? इसका कारण क्या है?' उन्होंने उस लाटपादरीसे इस प्रकार अपने प्रति अद्भुत प्रेम करनेका कारण पूछा तो उन लाटपादरीने शास्त्रीजी महाराजसे कहा कि 'पण्डितजी महाराज! आप इस समय थके हुए हैं और इधर इस समय रात्रि भी कुछ अधिक हो गयी है। इस समय आप भोजन करके विश्राम कीजिये। मैं प्रातःकाल आपके पास अवश्य ही आऊँगा, तब मैं उस समय आपको अपने जीवनकी सब बातें बताऊँगा।'

लाटपादरी यों कहकर अपनी कोठीपर चले गये। मन्दिरके पुजारीजीने लाटपादरीके दिये पैसोंसे आटा, घी, साग-सब्जी आदि सब सामान लाकर भोजन बनाया और शास्त्रीजी महाराजको बड़े प्रेमसे खिलाया। शास्त्रीजी महाराज रात्रिको उन्हीं पुजारीजीके पास सो गये।

लाटपादरीने अपने जीवनकी क्या घटना सुनायी?

प्रातःकाल होनेपर लाटपादरी साहब पूज्य शास्त्रीजी महाराजके पास आये और बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ उन्हें प्रणाम किया। फिर शास्त्रीजी महाराजको अपने साथ अपनी कोठी पर ले गये। वहाँ उन्हें उच्चासनपर बैठाकर अपने जीवनकी सत्य घटना शास्त्रीजी महाराजको सुनायी, जो इस प्रकार है—

''पूज्य शास्त्रीजी महाराज! मैं पहले हिंदू ही था। जातिका ब्राह्मण था और मेरा नाम दामोदर उपाध्याय था।

मेरा जन्म ब्राह्मणके घरमें हुआ था। मेरे पूज्य पिता आजमगढ़ जिलामें रहते थे। गरीबी बहुत थी, इसलिये मेरे पिताजी जयन्तियाकी पहाड़ियोंमें रोजगारकी तलाशमें चले आये थे। इधर हमारी माताजी भी मर चुकी थीं। हम अपने पिताजीके दो पुत्र थे। दुर्भाग्यसे हमारे पूज्य पिताजी बीमार हो गये और बहुत बीमार रहनेके पश्चात् चल बसे। पैसा हमारे पासमें था नहीं। हम दोनों ही भाई अभी छोटे-छोटे अबोध बच्चे थे, इसलिये कुछ लोगोंने मिलकर हमारे पिताजीके मृतक-संस्कारका प्रबन्ध कर दिया। अब क्या करते। माता-पिताको खोकर हम दोनों भाई इधर-उधर आवारा घूमने लगे। हम बड़ी ही घोर विपत्तिमें फँस गये। हमें उस समय कोई रोटी दे दे तो हम रोटी खा लें और नहीं दे तो भूखे-प्यासे मारे-मारे डोला करें। हमारी उस समय बड़ी दयनीय दशा थी। कुछ दिनोंके पश्चात् हमारी इस अत्यन्त दयनीय दशाको देखकर एक ईसाइयोंके यतीमखानेमें दाखिल करा दिया गया। कुछ दिनोंके पश्चात् एक और घोर विपत्ति मेरे ऊपर आयी कि वह मेरा छोटा भाई भी पेटकी भयंकर बीमारीके कारण चल बसा। अब तो मैं बस अकेला ही रह गया। मैं अब ईसाई स्कूलमें शिक्षा ग्रहण करने लगा। ब्राह्मण-घरमें जन्म होनेके कारण वहाँ विद्यार्थियोंमें अव्वल दर्जेमें था। इस तरहसे बी० ए० पास करनेपर मुझे अमेरिकाके ईसाई मिशनमें पादरी बना दिया गया। रहन-सहनकी सब सहूलियतें मुझे दे दी गयीं। अब तो मैं बड़े ही सुखसे अपना जीवन व्यतीत करने लगा। मेरी योग्यताकी ऐसी छाप उन लोगोंपर पड़ी कि उन लोगोंने फिर आगे चलकर मुझे कुछ दिनोंके पश्चात् ट्रेनिंगके लिये अपने ही खर्चेसे अमेरिका भेज दिया। अमेरिकामें मैंने एम्० ए० करनेके पश्चात् डाक्टरकी डिग्री भी प्राप्त कर ली और इन आसामकी पहाड़ियोंमें मैं लाटपादरी बना कर भेज दिया गया। एक एम्० ए० पास सुन्दर ईसाई-लड़कीसे मेरी शादी भी कर दी गयी।

अब तो मैं बड़े ही ठाटबाटसे आनन्दपूर्वक रहने लगा। मेरा जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। कुछ दिनोंके पश्चात् मैं अकस्मात् क्षयका (टी० बी० का) रोगी हो गया। मेरी वह बीमारी आगे चलकर यहाँतक बढ़ गयी कि मेरे मुखसे खून आने लगा। मैं अबतक भ्रमसे जिस अपनी स्त्रीको अपने प्राणोंसे भी प्यारी समझा करता था और जो अबतक मुझसे बड़ा भारी स्नेह और प्रेम करती प्रतीत हुआ करती थी, अब वही स्त्री मुझे तपेदिकका रोगी समझकर मेरे पासतक भी आनेके लिये तैयार नहीं होती थी। जिस कमरेमें मैं बीमार पड़ा रहता था, वह उस कमरेके अंदर भी नहीं आती और दरवाजेसे बाहर खड़ी होकर दूरसे ही मुझसे पूछा करती कि 'कहो डाक्टर, क्या बात है?' वह मुझसे रोज-रोज तानेपर ताने दे-देकर कहा करती कि 'तुम अस्पतालमें दाखिल क्यों नहीं हो जाते? अस्पतालमें दाखिल हो जाओ। तुम्हें तपेदिककी बड़ी बुरी बीमारी है। इसके कीटाणुओंसे यह सारा कमरा और सारा घर भर जायगा। फिर हमारे लिये भी जिंदा रहना मुश्किल हो जायगा।' वह हर रोज आती और आ-आकर बराबर यही सुनाया करती। वह मुझसे बड़ी घृणा किया करती और मेरी सेवा-शुश्रूषा करना तो दूर रहा, मेरे प्रति बड़े ही क्रूर शब्दोंका प्रयोग किया करती।

आखिर मैं उससे बड़ा ही परेशान हो गया और मैं जाकर एक अस्पतालमें भर्ती हो गया। उस अस्पतालमें भी वह बहुत कम आती और आती तब पास न आकर दूरसे ही एक ओर खड़ी होकर नर्ससे पूछती—'कहो, डाक्टरका क्या हाल है?' कभी-कभी दरवाजेपर दूर खड़ी होकर पूछ लेती—'कैसे हो डाक्टर!'

अब तो मेरे होश ठिकाने आ गये। मैं जो पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रँगकर हिंदू-धर्म, हिंदू-जाति और हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिको बड़ी ही घृणाकी दृष्टिसे देखा करता था, और ईसाई-संस्कृतिको ही सब कुछ समझकर उसपर बड़ा फिदा रहता था, अब तो मेरी आँखें खुल गयीं और मुझे ईसाई-संस्कृतिसे घृणा हो गयी। हिंदू-संस्कृतिकी अद्भुत महत्ता मेरी समझमें आ गयी। उस समय वे बड़े पवित्र भाव मेरे सामने आये कि आज यदि मेरा विवाह किसी सनातनधर्मी हिंदू-घरानेमें हुआ होता तो हिंदू-नारी कितने स्नेहसे तन-मन-धन लगाकर मेरी सेवा-शुश्रूषा करती!

मैंने श्रीकृष्ण-प्रार्थनाका अद्भुत चमत्कार क्या देखा?

मैंने मन-ही-मन बहुत दुखी होकर भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली और भगवान् श्रीकृष्णसे यह करबद्ध प्रार्थना की कि 'हे प्रभु श्रीकृष्ण! एक बार कृपाकर किसी प्रकार मुझे इस भयंकर बीमारीसे मुक्त कर दो तो मैं आज शपथ खाकर

कहता हूँ कि 'मैं इस ईसाई लड़कीको तुरंत तलाक देकर किसी गरीब अनपढ़ भारतीय हिंदू-लड़कीसे विवाह करके सुखसे दिन व्यतीत करूँगा और इस ईसाईमतको तिलाञ्जलि देकर, तेरा भजन कर अपना जन्म सफल करूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्णके स्मरण करने और भगवान् श्रीकृष्णकी करुण प्रार्थना करनेसे मैं सफल हो गया। मेरी करुण पुकार भगवान् श्रीकृष्णने सुनी और मेरा उस महान् भयंकर रोगसे छुटकारा हो गया। मैं भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

शास्त्रीजी महाराज! अब तो मैंने अच्छा होते ही सबसे पहले उस महान् कुलटा ईसाई-स्त्रीको तुरंत तलाक दे दिया और लाटपादरीके जो कानूनी बन्धन थे, वे भी सब समाप्त कर दिये। भगवान् श्रीकृष्णकी मेरे ऊपर यह बड़ी ही महान् अद्भुत कृपा है कि जो भगवान् श्रीकृष्णने ठीक मौकेपर आपको मेरे पास भेज दिया है। शास्त्रीजी महाराज! अब आप देर न करें। मुझे तुरंत भगवान्‌के मन्दिरमें ले जाकर मेरे लिये भगवान्‌का परम पवित्र श्रीभगवत्-चरणामृत देकर हिंदू-धर्मका अमृत पिला दें और मुझे अपने हिंदू-धर्मकी शरणमें ले लें।"

पूज्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी महाराज तुरंत दौड़े हुए मन्दिरमें गये और उस मन्दिरसे परम पवित्र श्रीभगवत्-चरणामृत लाकर उन लाटपादरीको हिंदू-धर्ममें दीक्षित किया। उसके बाद कुछ दिन पास रहकर उनको श्रीमद्भगवद्गीताका अमृत-पान कराया। इस प्रकार लाटपादरी सनातन हिंदू-धर्मकी शरणमें आ गये। जो लोग अपनेको सनातनधर्मी कहते और अपनेको हिंदू कहते लज्जाका अनुभव करते हैं, क्या वे इस आश्चर्यजनक सत्य घटनासे कुछ शिक्षा लेंगे? श्रीकृष्णस्मरणमें और सत्य सनातन हिंदू-धर्ममें क्या अद्भुत शक्ति है, इसे जानकर और सत्य सनातनधर्मकी शरण ग्रहणकर अपना और अपने कुलका कल्याण नहीं करेंगे?

बोलो सनातनधर्मकी जय!

शिव-शक्ति

सर्व-सृष्टि-आधार कौन है ? अग्नि-सोम शाश्वत निर्मल,
अग्नि-रूप काया शिवकी तो सोम-रूप है शक्ति प्रबल।
है अस्तित्व तभीतक जगका जबतक सोम-स्नेह दर्शित,
विकसित कर विद्या करता है सदा अग्नि ही उसे मुदित॥
स्थूल हों कि हों सूक्ष्म उन्हींसे भूतमात्रका है जीवन,
तेज और रससे भरते हैं वे ही सबमें आकर्षण।
सत्य, सोम उत्पन्न अग्निसे, शिवसे हुई शक्ति उद्भूत,
फिर भी सोम-शक्तिसे पाता अग्नि-रूप शिव प्राण-प्रभूत॥
ऊर्ध्व शक्तिमय अग्नि व्योममें पहुँच सोम बन जाता है,
अग्नि-सोमके हविर्यज्ञसे जगत् दृष्टिमें आता है।
कभी सोम भी अधः शक्तिमय वसुधापर होकर द्युतिमान,
'ॐ अग्निमीळे पुरोहितम्' का अपनाता नमन महान॥
प्रथम रुद्र-कंधोंपर पाते यदि हम दिव्य शक्ति-दर्शन,
तो फिर लगता अनिल-शक्तिपर अनल-रुद्रका चिर आसन।
शिव है सदा शक्तिमय पूजित, शक्ति सशिव पाती सम्मान,
जहाँ नहीं शिव और शक्ति रे, वहाँ विश्व यह है म्रियमाण॥×

—कुमुद विद्यालङ्कार

× बृहज्जाबालोपनिषद्, ब्राह्मण दोमें वर्णित शिव-शक्ति-रूप।

मूक प्राणियोंकी पुकार

(लेखक—भक्तप्रवर श्रीबाँकेबिहारीजी)

उस दयालु प्रभुकी अत्यधिक उपयोगी सृष्टि इन निरीह और मूक प्राणियोंकी दुर्दशा देखकर श्रीवासवानीका हृदय वेदनासे भर-भर उठता था। इन्हें वे अपने छोटे भाई-बहनें कहा करते थे। प्रतिदिन प्रातःकालकी अपनी पूजामें वे सजल नेत्रोंसे यह प्रार्थना करते सुनायी पड़ते थे कि "हे अपनी सृष्टिके निर्बल और दीन-हीन प्राणियोंकी व्यथा सुननेवाले प्रभो! हमारे हृदयोंको इनकी पीड़ा सुनना सिखा दो, इन वाणी-विहीनोंकी पुकार हम सुन सकें और उसे सुनकर इनका दुःख दूर कर सकें।' मनुष्यमें भ्रातृ-भावनाकी वृद्धि, जीवदयाकी संस्थाओंके स्थापन तथा जीवमात्रके प्रति सम्मानका (अर्थात् अहिंसा-धर्मके) प्रचार करनेके लिये वे बड़े व्यग्र रहा करते थे। मांस खानेके लिये पशुओंका वध करनेवाली और भारवाहक पशुओंपर अत्याचार करनेवाली रक्तरञ्जित एवं घिनौनी सभ्यताके प्रति उनका बहुत अधिक विरोध था। वे पशुओंके अधिकारोंकी सुरक्षा-सम्बन्धी अभिलेख (अधिकार-पत्र) के लिये सतत सचेष्ट रहे और लोगोंका ध्यान सदैव कालरिजके इन अमर शब्दोंकी ओर आकर्षित करते रहे—'वही सर्वोत्तम उपासना करता है, जो छोटे-बड़े सभी जीवोंसे अत्यधिक प्यार करता है; क्योंकि हमसे प्रेम करनेवाले प्रियतम प्रभुने ही उन सबको बनाया है और वह इन सबसे प्यार करता है।'

मानव-धर्मके प्रचार करनेके लिये वे विभिन्न देशोंकी सरकारोंसे अनुरोध करते रहते थे। भारतीय शासनसे उन्होंने विशेषरूपसे कहा था—"मुझे ज्ञात है कि सरकारी कार्य बहुत धीमी गतिसे चला करते हैं। मैं यह आशामात्र कर सकता हूँ कि वास्तविक स्वतन्त्र भारत क्रमशः एकके बाद दूसरा चरण उठाते हुए एक ऐसी अवस्थापर पहुँच जायगा, जो वस्तुतः मानवताकी भावना और भारतकी आत्माका प्रतिबिम्ब होगा। अतएव मेरा निवेदन है कि भारत सरकार ऐसी दिशामें अपने पग उठावे, जो अहिंसाके महनीय विचारसे प्रेरित वास्तविक अर्थमें मानवतावादी हो और जिसमें समस्त जीव-सृष्टिके प्रति अत्यधिक सम्मानकी भावना हो। क्या हम अशोककी धारणा और उसके आदर्शोंके प्रति सच्चे हैं? हमने अशोकके धर्मचक्रको अपना प्रतीक मान्य किया है। यह अत्यधिक खेदका विषय है कि भारतके महान् ऋषियों, बुद्ध और महावीर-द्वारा सर्वकालके लिये उद्घोषित महान् आदर्शको हम विस्मृत कर दें। अतएव मैं यह सुझाव दूँगा कि शासन पशु-जगत्की भावनाका आदर करे। विद्यालयोंमें मांस-भक्षण तथा पशु-वधके विरुद्ध भाषणोंके आयोजन हों। वे संत फ्रांसीसद्वारा नियत किये गये 'पशुदिवस' अनिवार्य-रूपसे मनावें और त्योहारोंके दिन पशुओं तथा पक्षियोंको चारा-चुग्गा डालें। साथ ही शासनको ऐसी शोधशालाएँ खोलनेके लिये भी आगे आना चाहिये, जहाँपर मांसके-जैसा स्वादु तथा पौष्टिक ऐसा कृत्रिम खाद्य बनाया जा सके, जो पशुओंके मांससे यदि उत्तम न हो तो कम-से-कम उनके तुल्य अवश्य हो। उस स्थितिमें समस्त वधशालाएँ अपने-आप बंद हो जायँगी। ऐसी शोधशालाएँ संसारमें भारतके अहिंसाके महान् आदर्शकी साक्षी होंगी।"

विशेषतया हमें गायके महत्त्वपूर्ण प्रश्न तथा उसके प्रति आर्यजातिकी श्रद्धाकी भावनाको विस्मृत नहीं करना है। गौको संसारकी माताके रूपमें सम्मान प्राप्त था। महाभारतका कथन है कि 'गौएँ अपने दुग्धसे ही संसारके समस्त प्राणियोंको धारण किये हुए हैं।' वैदिक स्तोत्रमें ऋषि गौको स्तुतिपूर्वक कहते हैं—'गौ कृपाकी मूर्ति है।' 'हिरण्यं मातम्' अर्थात् स्वर्णसहस्र गौके मूल्यका है। इस वर्णनसे ज्ञात होता है कि वैदिक युगमें नाप-तौलकी इकाई गौ थी। एक महान् विचारकने कहा है कि 'यदि हम पशुओंकी मर्मवेदनाके शतांशको भी वस्तुतः जान पायें तो उनसे अनुचित लाभ उठानेकी अपेक्षा भूखों मर जाना अधिक पसंद करेंगे।' वर्तमान सभ्यता अपने पथसे भटक गयी है। यह हृदय-प्रधान न होकर मस्तिष्क-प्रधान हो गयी है। हमारे विद्यालयोंमें पशुओंको शोध-परीक्षणोंका शिकार बनना पड़ता है। ओषधि-परीक्षणोंके लिये तथा विभिन्न रोगोंकी सूइयाँ लगाकर हम पशुओंकी बलि चढ़ाया करते हैं। अच्छा होता, यदि हम पाइथागोरसके इन शब्दोंको याद रक्खें—'ओ नश्वर

प्राणियो ! पापपूर्ण आहारके द्वारा अपने शरीरको अपवित्र बनानेसे सावधान रहो। तुम्हारे लिये अन्न, धान्य, अपने भारसे पेड़ोंकी डालोंको झुकानेवाले फल तथा सुस्वादु अंगूरोंसे लदी हुई वाटिकाएँ हैं; मधुर तरकारियाँ और फल-मूल हैं, जिन्हें रुचिकर तथा स्वादिष्ट बनानेके लिये अग्नि प्रस्तुत है। न तो हमें दूधकी मनाही है और न ही सुगन्धित पुष्पोंकी महकसे महकते हुए मधु रससे हम वंचित हैं। उदार वसुन्धरा तुम्हें शुद्ध आहारका प्रचुरतासे दान कर रही है और उसने बिना रक्त बहाये तथा बिना हत्या किये तुम्हारे लिये भोजनकी व्यवस्था कर रक्खी है।'

पशुवधके विरुद्ध संसारभरके धर्म-प्रवर्तक एकमत हैं। कुरानका कथन है कि 'पशु तथा पक्षी भी तुम्हारे ही समान प्राणी हैं और वे अपने प्रभुके पास लौट जायँगे।' हजरत मुहम्मद कहते हैं कि 'सारी सृष्टि एक परिवार है।' ईसाइयतके समान ही बौद्ध-दर्शनकी दस निषेधाज्ञाओंसे एक आज्ञामें कहा गया है कि 'तुम्हें हत्या नहीं करना है।' मनुष्यकी निर्दयताकी बीभत्स गाथाओंको पढ़कर कौन ऐसा पाषाणहृदय होगा जो सिहर न उठे और चिल्ला न पड़े कि 'हा मानव ! तू क्या था और क्या बन गया !'

साधु श्रीवासवानीद्वारा एक अंग्रेजी पत्रिकासे उद्धृत इस विवरणपर जरा ध्यान दीजिये कि इंगलैंडकी मांसको डिब्बोंमें बंद करनेवाली केवल एक फर्ममें प्रतिदिन क्या हो रहा है। और केवल इंगलैंडमें ही इस प्रकारकी कई बड़ी-बड़ी फर्में हैं। जरा दो-दोकी पंक्तिमें चलनेवाली १०,००० पशुओंकी १५ मील लंबी पंक्तिकी कल्पना कीजिये। उसके पीछे २०,००० हजार भेड़ोंको १२ मील लंबे मार्गपर मिमियाते हुए चलने दीजिये और उनके पीछे २७,००० सूअरोंको १६ मील लंबी पंक्तिमें हाँकिये। उनके पृष्ठभागमें ६ मीलके विस्तृत क्षेत्रमें प्रसृत मुर्गा मुर्गियों एवं अन्य पक्षियोंको दृष्टिपथमें लाइये। तब ५० मीलतक फैले हुए प्राणियोंके उस काफिलेको आप देख पायेंगे, जिसे किसी एक निश्चित स्थलसे गुजरनेमें दो दिनका समय लगेगा। ये सभी प्राणी डिब्बोंमें मांस बंद करनेके उद्देश्यसे 'स्विफ्ट एण्ड कम्पनी' (Swift & Co) में केवल एक दिनके अंदर मृत्युके घाट उतार दिये जाते हैं।

इस प्रकार अनुमान है कि प्रतिवर्ष लगभग भारतकी जनसंख्याके बराबर कम-से-कम ३० करोड़ पशुओंकी क्रूर हत्याका उत्तरदायित्व इस पशुवधपर है।

'जेकोस्लोवाक लाइफ (Czechoslovak Life) में प्रकाशित इस दहला देनेवाले एक दूसरे विवरणको पढ़िये। 'शिकारी-संघद्वारा प्रेषित आँकड़ोंके अनुसार गतवर्ष ७,३४२ हरिणों, ८२२ फरवता, ३३४ जंगली पहाड़ी भेड़ों, ४६,७३४ लाल मुर्गों, २,९८० जंगली रीछों, ६,९८,६३३ खरगोशों, २,८०,७४९ सुन्दर परोंवाली चिड़ियों तथा १,५०,४२२ तीतरोंकी हत्या की गयी। हानिकारक पशुओंके वधके नामपर उन्हें समाप्त करनेके मानो सर्वाधिकार शिकारियोंको प्राप्त है। सन् १९६० में ७०,००० ढोंढर कौए, २६,६०४ लोमड़ियाँ, १,२०,२७७ जंगली बिल्लियाँ और हजारों अन्य बिज्जू तथा हिंसक पशुओंका शिकार किया गया। शिकारका यह खेल इटली, फ्रांस तथा लैटिन अमेरिकामें भी प्रचलित है, जहाँ १,२०,००० से भी अधिक सुसंगठित शिकारी हैं।' यह स्थिति तो यूरोपके एक छोटे-से राष्ट्रकी है। इतनेसे ही इन निरीह प्राणियोंके जीवनके साथ होनेवाले इस क्रूर खिलवाड़की व्यापकताका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं।

'कैनेडियन थियोसोफिस्ट'ने (Canadian Theosophist) न केवल आहारके लिये अपितु फैशनके लिये जीवनसे हाथ धोनेवाली बहुत बड़ी पशु-संख्याके विषयमें रहस्योद्घाटन किया है। आयरलैंडसे जनवरी ६० में प्रकाशित 'थियोसोफिस्ट'के अङ्कमें लिखा है कि 'प्रायः दुकानोंके प्रदर्शन-कक्षोंमें कछुएकी पीठसे निर्मित फ्रेम, तश्तरियाँ, लेखन-सामग्री, बक्से, ताश रखनेके डिब्बे आदि दिखायी देते हैं। इनका उपयोग करनेवालोंको क्या यह ज्ञात है कि किस दहला देनेवाली क्रूरतासे इन्हें प्राप्त किया जाता है ? क्या वे जानते हैं कि बेचारे जीवित कछुएके पृष्ठभागको उससे अलग कर दिया जाता है। एक जलता हुआ अंगारा उसकी पीठपर इसलिये रक्खा जाता है कि यह पीठ ऊपरकी ओर मुड़ जाये और इसे चाकूसे अलग किया जा सके। कभी-कभी इस घोर यन्त्रणासे कछुआ मर जाता है। परंतु जहाँतक उनका बस चलता है, उसे मरने नहीं देते; क्योंकि नाखूनोंके समान ही कटा हुआ पृष्ठभाग पुनः बढ़ जाता है। जो कछुये पीठको काटकर निकालनेकी शल्यक्रियाके उपरान्त जीवित रह जाते हैं, उन्हें कष्टकारक संघर्ष करके अपने कटे अङ्गोंको परिपुष्ट बनानेके लिये समुद्रमें पुनः इस अभिप्रायसे लौटा दिया जाता है, जिससे उस नारकीय प्रक्रियाकी पुनरावृत्ति की

जा सके। एक वर्षके अंदर केवल लंदनमें ७६,००० पौंडसे भी अधिक वजनके कछुएकी पीठका विक्रय हुआ!'

अमेरिकन 'प्राकृतिक स्वास्थ्य-संघ' (American Natural Hygenic Society) के प्रधान डाक्टर शेल्टन (Dr. Shelton) कहते हैं कि 'पशुओंसे तैयार की गयी ओषधियोंसे बने हुए टीके बहुत बार स्नायु-रोगों—लकवा, कैंसर तथा अन्यान्य बीमारियोंका कारण हुआ करते हैं।' इस कथनके परिणामस्वरूप ब्रिटिश पब्लिक प्रेसने तो डा० शेल्टनकी इस टिप्पणीपर ध्यान भी दिया, परंतु अमेरिकाके समाचारपत्रोंने मौन साध लिया; क्योंकि इस विषयमें कुछ लिखनेसे वे अमेरिकाके उन औषध-विक्रेताओंके विज्ञापन आदिसे हाथ धो बैठते, जिन्होंने ३० हजार प्रकारके विविध विषोंके विक्रय तथा व्यापारद्वारा सौ खरब डालरका विशाल आर्थिक साम्राज्य खड़ा कर लिया है। यह सर्वविदित तथ्य है कि घोड़ेके पीवसे बने हुए इन्जेक्शन तथा अन्य प्रकारके तरल द्रव्य (Serum) लकवाका कारण है।

उपर्युक्त कारणोंसे लेडी मारगरेट अस्पताल (Lady Margaret Hospital) के वरिष्ठ चिकित्सक डा० ओल्डफील्ड (Dr. Oldfield) लिखते हैं कि 'आज यह रासायनिक तथ्य सभीके समक्ष है और इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि मानवीय जीवनके सम्पूर्ण भरण-पोषणके लिये जो कुछ भी अनिवार्य है, वह सभी कुछ साग-भाजीमें प्रचुरमात्रामें उपलब्ध है। मांस एक अप्राकृतिक खाद्य (unnatural food) है, इसलिये शरीर-यन्त्रके संचालनमें यह विकार उत्पन्न करता है। वर्तमान सभ्यतामें जैसा इसका उपयोग किया जाता है, उससे बड़े परिमाणमें कैंसर, क्षयरोग, ज्वर, आँतोंके कृमि आदि मनुष्यमें आसानीसे संक्रमण कर सकनेवाले भयानक रोग हो जाते हैं। अतएव इसमें किंचित् आश्चर्य नहीं है कि ९९ प्रतिशत सांघातिक रोगोंके गम्भीरतम कारणोंमेंसे मांसभक्षण एक प्रमुख कारण है।'

डाक्टरोंने जब जार्ज बरनर्ड शा (George Bernard Shaw) की गम्भीर बीमारीमें उन्हें एक बार यह बताया कि 'यदि वे मांस नहीं खायँगे तो मर जायँगे।' 'एक्सेलसियर' (Excelsior) समाचारपत्रके अनुसार उन्होंने इसका तत्काल उत्तर दिया—'मेरी स्थिति शोचनीय है। गोमांस-भक्षणकी कीमतपर मुझे जीवनदान देनेकी बात कही जा रही है, परंतु जीव-भक्षणकी अपेक्षा मृत्युका वरण करना अधिक श्रेष्ठ है। मैंने अपनी वसीयत (will) में अपनी शव-यात्रा-सम्बन्धी निर्देश दे दिया है। मेरे शवके पीछे-पीछे मातम मनानेवाली गाड़ियाँ नहीं होंगी, अपितु गाय, बैल, भेड़ें, मुर्गोंकी टोलियाँ और जीवित मछलियोंसे भरा हुआ सफरी मछलीघर मेरे पीछे-पीछे चलेंगे। वे सब उन पुरुषके सम्मानमें सफेद दुपट्टा ओढ़े रहेंगे, जिसने अपने बन्धु प्राणियोंको खानेकी अपेक्षा स्वयं मर जाना श्रेयस्कर समझा। नोआ आर्क (Noahis Ark) को छोड़कर यह शोभायात्रा अपने ढंगकी सबसे अनोखी वस्तु होगी।'

बरनर्ड शाकी निम्नलिखित अमर कविता इन पशुहत्यारों तथा मांस-भक्षियोंके हृदयमें पैठ जानी चाहिये। उनके व्यथित हृदयके ये उद्गार कितने सुन्दर हैं। (अनुवाद पढ़िये—)

"हम उन वध किये गये पशुओंकी जीती-जागती, चलती-फिरती कब्रें हैं, जिनकी हत्या हमारी क्षुधाको शान्त करनेके लिये की गयी है।

"हम अपनी दावतोंपर आश्चर्य करनेके लिये कभी थकते भी तो नहीं कि मनुष्योंके समान पशुओंके अधिकार भी हो सकते थे।

"हर रविवारको हम यह प्रार्थना करते हैं कि प्रभु हमें हमारे पथप्रदर्शनके लिये प्रकाश दें।

"हम युद्धसे उकता गये हैं; हम लड़ना नहीं चाहते; युद्धके विचार-मात्रसे हमारे हृदय भयसे कम्पित होने लगते हैं; फिर भी हम मृत-प्राणियोंको ठूँस-ठूँसकर अपने पेटमें भरते रहते हैं। सड़ा हुआ मांस खानेवाले कौएके समान हम जीवित रहते हैं और मांस खाते रहते हैं।

"इन कृत्योंके परिणामस्वरूप होनेवाली वेदना और कष्टोंकी हमें कोई चिन्ता नहीं। हम इन निरीह प्राणियोंके साथ शिकारके लिये अथवा किसी आर्थिक लाभके लिये यदि ऐसा व्यवहार करते हैं, तो इस जगत्‌में उस शान्तिकी स्थापनाकी आशा कैसे कर सकते हैं, जिसके विषयमें हम कहा करते हैं कि हम उसके लिये बहुत चिन्तित हैं।

"नैतिक नियमोंका अतिक्रमण करके इन वध किये गये पशुओंके महान् सामूहिक बलिदानोंपर खड़े होकर

हम ईश्वरसे उपर्युक्त प्रार्थना करते रहते हैं और वास्तवमें क्रूरता अपनी संतान युद्धको जन्म दे देती है।''

बर्नर्ड शा यह ठीक ही समझते हैं कि 'युद्धकी उत्पत्ति, नैतिक नियमोंकी अवज्ञा और हमारे अंदर क्रूर तथा कठोर प्रवृत्ति—इन सबका कारण पशु-हत्या है।' महान् मनोविश्लेषक डॉ० एनी बेसेंट (Dr. Annie Besant) को जब शिकागोंके बहुत बड़े-बड़े कसाईघरोंकी स्मृति दिलायी गयी तो उन्होंने कहा था कि 'अदृश्य जगत्से सर्वथा अनभिज्ञ लोगो! मैं तुमसे कहती हूँ कि पशुओंके इस निरन्तर वधको व्याख्या करनेके लिये हमारे सामने उपस्थित किये जा सकनेवाले अन्य सभी प्रश्नोंके अतिरिक्त इसका एक अत्यन्त गम्भीर पक्ष यह भी है कि इन कृत्योंसे भय, क्रोध, भयानकता, कामुकता, बदलेकी भावना आदि चुम्बकीय प्रभावोंका लगातार निक्षेप लोगोंके जीवनके अंदर काम करने लगता है। जिन लोगोंके अंदर ये खुलकर खेलते हैं, उन्हें ये पतनकी ओर ले जाते हैं और भ्रष्ट करनेको प्रवृत्त हो जाते हैं। पशुओंके मांससे न केवल शरीर ही मलिन होते हैं, अपितु मनुष्यकी आभ्यन्तरिक सूक्ष्म शक्तियाँ भी भ्रष्टताके इस प्रभाव-क्षेत्रमें आ जाती हैं। वस्तुतः वध किये गये पशुओंकी आत्माओंके तीव्र प्रतिरोधका प्रतिबिम्ब सूक्ष्म अन्तर्जगत्द्वारा इन पशुहत्यासे सम्बन्धित लोगोंके जीवनपर पड़ता है और शहरी जीवनमें दिखायी देनेवाली कुत्सित प्रवृत्तियाँ बहुत अंशोंमें इसीके परिणाम हैं।'

इसके अतिरिक्त बाजारमें घूमते समय आपको रास्तेमें मिलनेवाले कसाइयोंके निर्दयी मुखमण्डल किस प्रकार आपके अंदर क्रूर प्रवृत्तियोंको पोषित करते रहते हैं, इसपर भी जरा विचार तो कीजिये।

इसलिये अहिंसाके महान् उपदेशक 'महावीर' कहते हैं कि 'बुद्धिमत्ताका सार-सर्वस्व यही है कि किसीका भी वध न करो।' मनुका कथन है कि जीवोंकी हत्याके बिना मांस उत्पन्न नहीं होता और जीवोंकी हत्या स्वर्गके मार्गको अवरुद्ध कर देती है। मांस खानेसे सर्वथा बचो। जो मांसभक्षी नहीं है, वह सर्वप्रिय होता है और रोगोंकी घोर यन्त्रणासे उत्पीड़ित नहीं होता। जो पशुवधकी अनुमति देता है, जो वध करता है, जो उसके अङ्गोंको काटता है, जो खरीदता है, जो बेचता है या पकाता या परोसता है और जो खाता है—ये सभी हत्यारे हैं। उन मनुष्योंसे बढ़कर और कोई बड़ा पापी नहीं है, जो अन्य प्राणियोंके मांसको खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं।'*

मारकस औरेलियस (Marcus Aurelius) पूछते हैं कि 'जो व्यक्ति किसी मछली, बेचारे खरगोश, जंगली सूअर अथवा भालुओंको जालमें फँसाकर अभिमानसे फूले नहीं समाते, क्या वे सब डाकू नहीं हैं?'

चार्लस ब्रैन्ड (Charles Brandt) ने लिखा है कि 'ऐसे पशुओंके निर्दोष अङ्गोंको केवल उदरस्थ करनेके उद्देश्यसे उनकी हत्या करना बहुत अशोभनीय बात है, जिनका उदर हमारी अपेक्षा अधिक स्वस्थ है, जिनका हृदय हमारे हृदय-जैसा कपटपूर्ण नहीं है और जिनका मस्तिष्क हमारी अपेक्षा अधिक स्वच्छ है, उन पशुओंकी लाशें खा-खाकर हमने अपने-आपको चलती-फिरती कब्रें बना डाला है। यदि प्रत्येक व्यक्तिको उसके द्वारा खाये जानेवाले पशुओंकी हत्या स्वयं करनेके लिये बाध्य किया जाय तो ५० प्रतिशत मांसभक्षी इस निर्दयी तथा विरक्तिकारक आहारका परित्याग कर दें।' किसी कसाईद्वारा मारे गये मांसको खानेवाला व्यक्ति उस डरपोकके समान है, जो किसीकी नरहत्या करनेके उद्देश्यसे अपराधीको रुपया देता है। इसलिये मांसभक्षी व्यक्ति कसाईकी अपेक्षा भी दुगुना अपराधी है।'

क्लेजियस (Clezias) ने कहा है—'केवल निगलनेके लिये किसी पशुको मारना दोहरा अपराध करनेके तुल्य है।'

एमर्सन (Emerson) ने लिखा है—'आपने बड़ी सतर्कताके साथ भले भोजन कर लिया हो और कसाईघर यहाँसे पर्याप्त दूरीपर आँखोंसे ओझल हो, तो भी आप इस पाप-कृत्यमें सहभागी हो ही गये।'

---

* नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥
× × ×
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते।
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी॥
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति॥
× × × × × नतोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत्॥
(मनुस्मृति ५। ४८, ५०-५२)

बहुत पुराने समयमें ही विवेकशील लोग हत्याके लिये प्रयुक्त किये जानेवाले नित्य नये नृशंस तरीकोंसे भयभीत रहे हैं, जिनकी वीभत्सता कालकी गतिके साथ बढ़ती ही चली जा रही है। प्लुटार्क (Plutarch) ने शताब्दियों पूर्व ही कहा था—'इन उदरोंके साथ वाद-विवाद करना अत्यन्त कठिन कार्य है; क्योंकि इन उदरोंके कान नहीं हैं और धोखाधड़ी तथा अपनी मोहिनी-शक्तिसे मोहनेवाली किसी जादूगर सुन्दरीके समान हमने प्रथाका मादक घूँट भी पी लिया है। अब जब कि मनुष्यमें भोगसुखोंकी वासना बहुत गहराईतक प्रविष्ट हो चुकी है और परिपुष्ट हो गयी है तो उनके शरीरोंसे मांस-लगे लुभावने काँटेको बाहर निकाल फेंकनेकी चेष्टा करना कोई आसान कार्य नहीं। जिस प्रकार मिश्रके लोग ज्ञानके प्रकाशकी ओर पीठ करके शरीरके भीतरसे मृतकोंकी अँतड़ियोंको लेते थे तथा पापका एकमात्र उद्गम तथा मूल कारण समझकर उसे निकालकर फेंक दिया करते थे, उसी प्रकार पापको अपने भीतरसे निकालकर अपने जीवनको पवित्र बना लें तो अधिक अच्छा हो। बद्धमूल आदतका तर्क देकर यदि किसीके लिये निष्कलंक आहार कर सकना असम्भव हो तो भूखसे पीड़ित उस व्यक्तिको विलासयुक्त स्वादके कारण नहीं, अपितु लज्जायुक्त होकर अपना ही मांस निगलना चाहिये।'

हत्या करते समय कितनी निर्दयता उपयोगमें लायी जाती है। सूअरका ही उदाहरण लें। गरम-गरम लाल-लाल लोहेकी सलाखें उसके शरीरमें घुसेड़ दी जाती हैं ताकि इस प्रकार विकीर्ण होनेवाले रक्तके सिकुड़नेसे मांस मुलायम और कोमल हो जायगा। इसी प्रकार कसाई गाभिन गायके थनोंपर टूट पड़ते हैं अथवा उनके थनोंपर लातोंसे मारते हैं, जिससे ठीक प्रसवकी पीड़ाके कालमें ही पशुके रक्त, दूध तथा गर्भस्थ शिशुकी एक साथ हत्याकर वे उसके अस्वाभाविक रीतिसे फुलाये हुए लाल मांसके भक्षणका आनन्द उठा सकें। पुनः राजहंस तथा सारसकी आँखोंको सीकर उन्हें अँधेरे स्थानोंमें मोटा होनेके लिये छोड़ देना तो प्रचलित रिवाज हैं। इन विधियों और इसी प्रकारके अन्य उपायोंद्वारा विविध प्रकारकी चटनियों और मसालोंके साथ हमारे सुस्वादु व्यञ्जन तैयार किये जाते हैं! इससे स्पष्ट है कि न केवल भोजनकी अनिवार्यता अथवा किसी आवश्यकताके कारण मनुष्यने अपनी अनियन्त्रित भूख बढ़ा रक्खी है, बल्कि जिह्वालोलुपता, बिलासप्रियताके आनन्दके लिये ही। क्रीड़ा, कौतुक, पेटूपन तथा प्रदर्शनमात्रके लिये ही इसका जन्म हुआ है।

पीटर हॉफमैन (Peter Haffman) ने उस समयके भारतके कसाईखानोंमें पशुओंके साथ किये जानेवाले व्यवहारका हृदयविदारक चित्र खींचा है। उसका कथन है कि 'मैंने जिस कसाईखानेका छायाचित्र (Photo) लिया है, उसीका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। पशुहत्याकी यह पद्धति भारतकी अपनी अनोखी पद्धति है। वध करनेके लिये भेड़ों और बकरियोंको एकत्रित किया जाता है और उनकी एक पिछली टाँग पकड़कर कसाईखानेके फर्शपर घसीटा जाता है। वहाँ प्रविष्ट होनेके पूर्व ही वे सशंक हो जाती हैं और उन्हें निर्दयतापूर्वक घसीटकर लानेवाले व्यक्तिके साथ अधिक संघर्ष करनेके अनुपयुक्त बना दिया जाता है। वह व्यक्ति एक ही बारमें कई पशुओंको एक साथ ले जा सकता है। रक्तके कारण फर्शपर फिसलन हो जानेसे पशुओंको अपने पैर जमाकर रख सकना असम्भव हो जाता है। वे मिमियाते हुए घसिटते जाते हैं और कभी-कभी भयसे मेमने भी गिराते जाते हैं; खड़ा होनेकी चेष्टा भी करते हैं, परंतु सदा उस चिपचिपे रक्तके कारण गिर पड़ते हैं। उन्हें ताजे मारे गये पशुओंकी लाशोंके ढेरके पाससे घसीटा जाता है, जहाँ कुछकी खाल उतारी जा रही है और उन्हें रक्तकी नालीके ऊपर एक पंक्तिमें छूरेकी प्रतीक्षामें लटकाया गया है। वहाँ एक व्यक्ति उस छटपटाते हुए पशुके ऊपर बैठ जाता है, जो अपने सामने मरे हुए तथा मारे जा रहे पशुओंसे अब घिर चुका है और जिसके कानोंमें उनकी कँपा देनेवाली चीखें आती रहती हैं। उनके रक्त और मल-मूत्रसे उसका सारा शरीर सन जाता है, उसकी नासिकामें उसकी भयंकर दुर्गन्ध आती रहती है। उसके पश्चात् आती है उसे काट डालनेवाले छूरेकी तीव्र वेदना, सर्वनाशकी कम्पनकारी भावना, निकट आता हुआ अन्धकार और साथ ही उसे चारों तरफ घेरनेवाले अन्धकारके विरुद्ध संघर्ष कर सकनेमें अपनी असमर्थता-जनित भय!

बड़े पशु भी इसी तरहके बुरे तरीकोंसे मारे जाते हैं। परंतु वे एक साथ बड़ी संख्यामें हत्या करनेके लिये पूरी वधशाला भरने लायक बड़े समूहके रूपमें लाये जाते हैं। कई आदमियोंकी टोली उनकी टाँगोंको रस्सेसे बाँध देती है। उस प्राणीके पैर उसके नीचेसे खींच लिये

जाते हैं और वह कठोर धमाकेके साथ एक तरफ गिर पड़ता है। तब उसकी चारों टाँगोंको एक साथ बाँध दिया जाता है और कसाई एकके बाद दूसरेकी गरदनें काटता हुआ निकल जाता है। उसके पास पहुँचनेपर दो व्यक्ति उस पशुके सिरको पकड़ लेते हैं और अपनी पूरी शक्तिके साथ उसे पीछेकी ओर मरोड़कर लम्बा कर देते हैं!

गौएँ, बैल और भैंसे रस्सा बाँधते समय कुछ छिटकती हैं, संघर्ष करती हैं। यद्यपि बहुत-सी ऐसा भी नहीं करतीं। उनकी उस समयकी मुखाकृतियोंके भाव बहुत ही करुण तथा मर्मभेदी होते हैं। यदि आपने कसाईखानेके अंदर पशुओंकी मुखाकृतिका कभी अध्ययन किया हो तो आप उस अनुभवको कभी भुला नहीं सकते। आँखोंके सामने दिखायी देनेवाली मृत्युभयकी विभिषिका और प्रायः नैराश्ययुक्त आत्मसमर्पण! फिर भी सम्पूर्ण भाव आत्यन्तिक आतङ्कसे आतङ्कित दिखायी देते हैं, मानो वे यह जानना चाहते हैं कि क्या होने जा रहा है। उसमेंसे बच निकलनेका कोई रास्ता न जानते हुए भी वे बचकर निकलनेको बेचैन हैं। उनकी आँखें फैल जाती हैं और भले ही वे संघर्ष करें अथवा न करें, उनका पशु-मानस स्पष्टतया घोर अशान्तिसे ग्रस्त दिखायी देता है। मारे जाने, बलात् पटक दिये जाने, अन्य मरनेवाले पशुओंका चीत्कार, उनके चारों ओर मरनेवाले साथी पशुओंके शरीरसे निकले हुए ताजे रक्तप्रवाहका दृश्य तथा दुर्गन्ध—ये सब स्वाभाविक ही उनके कष्टोंकी अभिवृद्धि कर देते हैं। अन्तमें तानी हुई गर्दन तथा छूरेकी पीड़ा और रक्तके तीव्रवेगसे निःसरणके समय आत्यन्तिक भयमिश्रित अन्तिम कष्टदायक क्षण और मृत्यु! मनुष्यकी इस घोर निर्दयी भूखकी बलि चढ़कर एक निरीह प्राणीको किस तरह विवश होकर अपने जीवनसे हाथ धोने पड़े!!

भोजनके निमित्त पशुओं और विशेषतया सूअरोंकी हत्याके लिये भारतमें इन कसाईखानोंके बाहर उपर्युक्त उपायोंसे भी कहीं अधिक वेदनाभरे तथा घोर यन्त्रणादायक उपायोंका अवलम्बन किया जाता है। कुछ जातियोंके लोग उन्हें भालेसे मारते हैं, कुछ उन्हें जीवित ही पका डालते हैं। और भी कई भयानक बातें की जाती हैं। कहीं-कहींपर यह दारुण मिथ्या धारणा बनी हुई है कि सूअरके मरनेकी प्रक्रियामें जितना अधिक समय लगता है, उतना ही उसका मांस अच्छा होता है; इसीलिये मरनेवाले सूअरकी चीत्कार घंटोंतक सुनी जा सकती है!

इस निर्दयता, बर्बरता तथा नीचताका अवलम्बन करनेके लिये बड़े लोगोंका उदाहरण अथवा अधिकार-पत्र तुम्हें कहाँसे मिला? क्या तुम यह जानना चाहते हो कि इस 'मांस-भक्षण' अथवा पशुहत्या-जैसे कृत्योंके द्वारा तुम निश्चित ही नरक जानेका मार्ग प्रशस्त कर रहे हो? तुम इस अटल परिणामसे बच नहीं सकते। तुम्हारी दावतें और तुम्हारे उत्सव—जिनके हेतु पशुहत्या की जाती है, तुम्हारे लिये सीधे नरकके द्वारमें पहुँचानेका काम कर रही हैं! तुम प्रमाण चाहते हो तो यह लो। ऋषि और संत तो अहिंसक तथा निरामिषभोजी थे ही। चार्ल्स ब्रैंडने एक सूची (list) में लिखा है—'शक्तिशाली और महानतम विचारक सभीके सभी निरामिषभोजी थे। बुद्ध, कनफ्युसियस, जोरास्टर, मोहम्मद, मूसा, ईसा, एम्पीडोसलस, पाईथागोरस, सुकरात, प्लेटो, होमर, पारफाइरियस, लुक्रेजियस, सिसरो, होरेस, यूरेपीडीज, स्पाइनोज़ा, न्यूटन, लोनारडोदा विन्सी, क्याडानों संत फ्रांसिस, गैसेंडी, लिट्टर, मिल्टन, फ्रैंकलिन, संत पीरें, बायरन, शैली, मिचूलेट, दांते, वालजर, टालस्टाय, रेक्लूज, फ्रान्ज, हार्टमान, बरनार्ड शा, कार्मन साइल्वा, जेमेनहाफ, वालटेयर, रूसो, वेगनर, शोपेनहर, हुम्बोल्ट, लेबनीज, लिन्ने, क्यूवियर, निट्से, ह्यूफलेण्ड, बेलामी, एडीसन तथा गोइथे'।

वैज्ञानिक प्रयोगके लिये अनियन्त्रित चीर-फाड़ क्रूरताका एक अन्य रूप है। अमेरिकामें गतवर्ष ६० लाखसे भी अधिक पशुओंका उपयोग इस प्रयोगके कार्यके लिये किया गया और इन चीर-फाड़ करनेवाले वैज्ञानिकोंका कथन है कि इस कार्यके लिये और भी अधिक प्राणियोंकी आवश्यकता है!

पशुओंके इस क्रूर हत्याकाण्डमें फैशनका कितना हाथ है, यह भी सुन लीजिये। नारियोंके सुन्दर बालोंके गुच्छों या फर प्राप्त करनेकी चाहको लाखों-लाखों संवेदनशील कोमल प्राणियोंके प्रति निर्दयता करके ही पूरा किया जाता है! ये प्राणी जाल डालनेवालोंके डंडोंसे मरनेके पूर्व कभी-कभी अपने कुचले गये पंजों और टूटी हुई टाँगोंके साथ कई-कई दिनोंके लोहेके दाँतोंवाले जबड़ोंसे बने हुए भयंकर फंदेमें तीव्र यन्त्रणाएँ भोगते रहते हैं!

ईसाइयोंका कथन है कि 'ईसामसीहने मांस खानेकी मनाही नहीं की है।' श्री जे० जे० औसले (J. J. Ous

ley) ने अपनी पुस्तक 'दी गॉस्पेल ऑफ होली ट्वैल्व (The Gospel of Holy Twelve) में इस कथनको गलत सिद्ध किया है। उनका कहना है कि 'मूल बाइबिलके बहुत-से दोषपूर्ण अनुवाद प्रचलित हो गये हैं। हित-विशेषमें रुचि रखनेवालोंने मूल शब्दोंमें अनधिकार परिवर्तन कर डाला है।' वे कहते हैं—'इन सुधार करनेवालोंने हमारे ईश्वर ईसामसीहकी उन शिक्षाओंको बड़ी सावधानीसे काटकर निकाल दिया है, जिन्हें मानकर उनके अनुसार चलना वे नहीं चाहते। जैसे, मांस-भक्षण तथा तीव्र सुराका पान एवं मांस-भक्षणके विरुद्ध तर्क प्रस्तुत कर सकनेवाली कोई भी बात। इसके साथ ही पुनर्जन्मकी महान् शिक्षा, जिसका वे अनुसरण नहीं कर सकते थे, उसको भी उसमेंसे निकाल दिया।'

परंतु सत्यको दबाकर कैसे रक्खा जा सकता था। सर कॉलिन कार्बेट (Sir Collin Corbet)की हालमें प्रकाशित पुस्तक 'द रिंगिंग रेडियन्स' (The Ringing Radiance) ने पुनर्जन्म-सम्बन्धी प्रकरणमें इंगलैंडके मिस्टर पोलिक (Mr. Pollick) की घटनाको उद्धृत किया है, जिसमें दो बच्चोंने उसी परिवारसे पुरानी आदत ही नहीं, अपितु माथेके पुराने क्षत-चिह्नोंके साथ फिरसे जन्म लिया। यह बात हमें तत्काल इस महत्त्वपूर्ण विषयकी ओर ले जाती है कि शास्त्रोंके कथनानुसार मांसभक्षियों, कसाइयों और शिकारियोंकी क्या दशा होगी? गरुड़पुराण और श्रीमद्भागवतके पुरञ्जन उपाख्यानोंमें तथा गीताजीमें यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार ये लोग असह्य नारकीय पीड़ा भोगकर फिर पशुयोनिमें जन्म लेंगे और अपनी क्रूरताओं तथा दुष्कृत्योंका फल केवल एक जन्ममें ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरतक भोगते रहेंगे। देखिये गीताके १६वें अध्यायके १९वें तथा २०वें श्लोकोंको।*

क्या अब भी चेतनेका समय नहीं आया कि हम मानव बनें और निरीह पशु-पक्षियोंपर अत्याचार करनेसे बचें? मांस खाना छोड़कर अपने घरोंको पवित्र बनावें और प्रयोगशालाओंमें प्रयोगके लिये मारे जानेवाले पशुओंकी हत्या बंद करें? ऐसा शिकार खेलना छोड़ें, जो भगवान्के इन सुन्दर प्राणियोंको नष्ट करता हो!

मानवके वर्त्तमान कर्म, उनका बुरा फल और मानवका कर्तव्य

मानव आज बन गया दानव राक्षस निर्दय प्रेत पिशाच।
बन हत्यारा क्रूर, कर रहा नृशंसताका नंगा नाच ॥१॥
मानव, पशु, पक्षी, तिर्यक् सब कीट, पतङ्ग हो रहे भीत।
घातक बन, निर्लज्ज, गा रहा वह दुर्वृत्त शान्तिके गीत ॥२॥
नित नव नाशक शस्त्र बनाता, नित नव रचता नाश-विधान।
इसी जघन्य कर्ममें उसका व्यय हो रहा ज्ञान-विज्ञान ॥३॥
इसी आसुरीवृत्तिजनित तमसे आच्छादित उसके काम—
होते सभी वैर-हिंसाके वर्धक, दुःख-शोकके धाम ॥४॥
जीवनभर अनन्त चिन्ता-अशान्ति दुःखोंमें वह रह चूर।
मरकर भीषण नरक-यन्त्रणा भोग करेगा वह भरपूर ॥५॥
प्राणी सकल उसे नोचेंगे, खायेंगे, देंगे अति कष्ट।
हो जायेगी दुःख-यातना मिटनेकी सब आशा नष्ट ॥६॥
दुःखमयी आसुरी योनियाँ उसे मिलेंगी बारंबार।
कोई वश न चलेगा, कोई नहीं सुनेगा आर्त-पुकार ॥७॥
मानव बन होगा दरिद्र, रोगी, अपमानित अङ्ग-विहीन।
दुःख-ताप-संतप्त रहेगा नित कराहता होकर दीन ॥८॥

इन सब बातोंपर विचार कर, हिंसा छोड़, बढ़ाओ प्रेम।
किसी जीवको दुःख न देकर, करो सभीका योगक्षेम ॥ ९ ॥
सबमें देख नित्य ईश्वरको, सबका सदा करो सम्मान।
यथाशक्ति हित करो सभीका विनययुक्त दो सुखका दान ॥ १० ॥

---

* तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
(गीता १६। १९-२०)

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

[नेति-कर्म]

(लेखक—गुरु श्रीरामप्यारेजी अग्निहोत्री)

नेति-कर्म स्वरोदयका प्रमुख अङ्ग है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि इस कर्ममें पारंगत होते थे। बाह्य प्रक्षालनके साथ-साथ आन्तरिक प्रक्षालनकी ओर विशेष प्रयत्नवान् होते थे। हठयोगके षट्-कर्मोंका सम्बन्ध आन्तरिक प्रक्षालन-प्रक्रियासे है। नेति-कर्म भी षट्-कर्मोंमें एक है। यह दो प्रकारका होता है—१ जल-नेति, २ सूत्र-नेति।

(१) जल-नेति—प्रातःकाल शौचक्रियासे निवृत्त होकर नेति-कर्ममें प्रवृत्त होना उपयुक्त होता है। शौचक्रिया-से निवृत्त होनेपर एकान्त स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ जाना चाहिये। चिन्ताओंसे रहित होकर शरीरको बिल्कुल ढीला कर लेना चाहिये। ऐसा करनेके अनन्तर श्वास-प्रश्वासकी परीक्षा करनी चाहिये। सूर्य या चन्द्र-स्वर चलनेपर नेति-कर्म करना उचित होता है। शिव-स्वर चलने-पर नेति-कर्म कदापि करना उचित नहीं है।

जिधरकी नासिकाके छिद्रसे श्वास-प्रश्वासकी क्रिया अधिक वेगवान् हो, उसी ओरवाले हाथकी गदेलीमें स्वच्छ और ताजा, किंतु ठंढा जल लेकर उसी नासिका-छिद्रसे जल-को श्वासके प्रवेगसे ऊपरकी ओर खींचना चाहिये। भरपूर वेगसे जल खींचनेपर नासिका-छिद्रसे वह मुँहमें आ जायगा और तब मुँहमें आये हुए जलको बाहर निकाल देना चाहिये। ऐसा कई बार पाँच-पाँच मिनटके अन्तरसे करने-पर नासिका और मुख-छिद्रका मार्ग स्वच्छ हो जाता है और स्फूर्तिका अनुभव होने लगता है। पहले ऐसा करनेपर सिरके पिछले भागमें, जहाँपर मस्तिष्कका स्थान होता है, कुछ गुदगुदाहट-सी प्रतीत होती है; किंतु कुछ दिनोंके अभ्यास-से यह गुदगुदाहट बंद हो जाती है। जल खींचनेकी इस क्रियाको 'आरोही' कहा जाता है। इसकी दो प्रक्रियाएँ होती हैं। एक तो जल खींचकर मुँहमें लाया जाता है और दूसरी प्रक्रियामें नाकसे खींचा हुआ जल पेटमें चला जाता है।

जल-नेतिकी दूसरी क्रिया 'अवरोही' होती है। इसमें खींचा हुआ जो जल मुँहमें आ जाता है या पेटमें चला जाता है, उसे दूसरे नासिका-छिद्रसे बाहर निकाला जाता है। ऐसा करते समय जिस नासिका-छिद्रसे जल खींचा जाता है, उसे अँगूठेसे बंद करना होता है। जल-नेतिकी यह क्रिया बड़ी कठिन है। लगातार खाली पेट अभ्यास करते-करते कुछ दिनोंमें यह क्रिया परिपुष्ट होती है। इससे श्लेष्माका विकार दूर हो जाता है और स्फूर्ति बढ़ती है। नाक, गले और पेट-के रोग नष्ट हो जाते हैं तथा स्मरण और मेधाशक्तिका उत्तरोत्तर विकास होता है।

(२) सूत्र-नेति—जल-नेतिसे भिन्न सूत्र-नेति है। आपसमें इन दोनोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। सूत्र-नेतिकी तीन प्रक्रियाएँ होती हैं। (१) सामान्य, (२) घर्षण और (३) युगल।

सूत्र-नेतिके पहले सूत्र-निर्माण आवश्यक है। बाजारमें मिलनेवाले कच्चे सूतके पंद्रह धागे लेकर उसे बिना बटे एकमें मिला लेना चाहिये और उसके किसी भागमें मोम लगाकर पतला कर लेनेके बाद कपड़ेसे मोम लगे भागको इस प्रकार पोंछ देना चाहिये, जिससे धागेमें लगा मोम न छूटे और वह भाग खूब चिकना हो जाय। इस प्रकारका सूत्र-भाग छः इंचसे अधिक न हो।

सूत तैयार हो जानेपर जिस नासिका-छिद्रसे श्वास-प्रश्वासका वेग अधिक तेज हो, उसी छिद्रमें सूतके चिकने और पतले भागको श्वासके वेगसे खींचनेका प्रयास करना चाहिये। साथ ही दूसरा छिद्र अँगुलीसे एकदम बंद रखना चाहिये। ऐसा करनेसे सूतका वह भाग धीरे-धीरे नाकके उस छिद्रसे प्रवेश कर मुखमें आ जायगा। मुखमें सूत आ जानेसे अँगुलियोंके सहारे धीरे-धीरे मुँहके बाहर निकाल लेना चाहिये। इस तरह अटका हुआ कफ सूतमें लग जायगा। प्रारम्भमें कम-से-कम दस दिनोंतक यह क्रिया केवल एक ही बार करनी चाहिये। अभ्यास हो जानेपर यह क्रिया ज्यादा-से-ज्यादा पाँच बारतक की जा सकती है। यही है सूत्र-नेतिकी सामान्य विधि।

घर्षण-नेति इससे कुछ भिन्न है और वह यह कि मुखमें जैसे ही सूतका पतला भाग आ जाय, उसे मुखमें कम-से-कम चार इंचतक सूतका भाग धीरे-धीरे खींचकर उसे

बहुत धीरे-से मुँहके अंदर ही बँटती पद्धतिके अनुसार फिराना चाहिये और इस तरह ज्यादा-से-ज्यादा पाँच बारतक सूतको मुँहमें घुमाकर बाहर बहुत ही धीरे-धीरे निकाल लेना चाहिये। जिस समय मुँहमें सूत फिराया जायगा, उस समय उसके वेगसे नाकद्वारा घुसा हुआ पूरा सूत फिरता जायगा और इस मार्गमें जो कफका अंश होगा, सूतमें लगकर बाहर आ जायगा। यही घर्षणकी प्रक्रिया है।

सूत्र-नेतिकी तीसरी प्रक्रिया 'युगल-नेति' है। इसकी भी विधि सामान्य नेतिकी ही तरह है। अन्तर इतना है कि एक छिद्र दबाकर, वायुके वेगवाले छिद्रसे ऊपरकी ओर खींचा जाकर, वायुके वेगसे दूसरे छिद्रसे वह बाहर निकाला जाता है। सूत ऊपरकी ओर खींचते समय नाकका दूसरा छिद्र अँगूठेसे दबा होता है, किंतु सूत निकालते समय वह छिद्र भी खुल जाता है। इस प्रकार करनेकी प्रक्रियाको 'युगल-नेति' कहा जाता है। यह प्रक्रिया अधिक क्लिष्ट होती है और कुछ दिनोंके अभ्यासके बाद सिद्ध होती है। सूत नाकके एक छिद्रसे पूरकद्वारा ऊपर खींचा जाकर, रेचकद्वारा मुखसे न निकालकर दूसरे छिद्रसे निकाला जाता है। यह प्रक्रिया निम्नकोटिकी है।

नेति-कर्म प्रारम्भ करते समय दो-तीन दिनोंतक उकताहट-सी प्रतीत होती है और नाकके छिद्र-स्थलपर कुछ दर्द-सा प्रतीत होता है। पीड़ा शान्त करनेके लिये नेति-कर्म करनेके पहले गायका घी सूँघना चाहिये। नेति-कर्म करनेसे नाकके छिद्रोंके मसे मिट जाते हैं, पीनस रोग सदाके लिये शान्त हो जाता है। संकुचित नाकके छिद्रोंमें बढ़ाव हो जाता है; साथ ही जुकाम भी कभी नहीं होता। इतना ही नहीं, चित्त प्रफुल्लित रहता है और शरीरमें तेज और स्फूर्तिका विकास होता है। नाक, कान, दाँत और गलेके रोग कभी नहीं उभड़ते।

पीलिया (कमल या पाण्डु), अम्लपित्त, पित्तज्वर, ऊर्ध्व-रक्तपित्त, नासिका-छिद्रोंमें दाह, नेत्र-दाह, मस्तिष्ककी दाहके अलावा पित्तजन्य रोगोंवाले व्यक्तिको नेतिकर्म नहीं करना चाहिये। इससे लाभके स्थानपर हानिकी अधिक सम्भावना होती है।

शारीरिक साधन

(लेखक—डा० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी')

'तप'का अर्थ है—शारीरिक साधना। शरीर ठीक न हो तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता। शारीरिक साधनाका अर्थ यह है कि शरीरमें हर प्रकारकी दशाको सहन करनेकी शक्ति हो और इस शक्तिको उत्पन्न करनेके लिये यह आवश्यक है कि शरीरको ठीक रखनेकी विधिका ज्ञान हो। शरीरको ठीक रखनेकी विधि क्या है, इसके लिये एक कहानी सुनें। सम्भव है, यह कहानी शायद समझानेके लिये बनायी गयी हो। कहानी यह है—

महर्षि चरक जब आयुर्वेदके सारे ग्रन्थ लिख चुके, सब प्रकारकी विधियोंका, सब प्रकारकी ओषधियोंका—चिकित्साओंका वर्णन कर चुके और उनका प्रचार हो चुका तब उनके मनमें विचार आया कि चलूँ, देखूँ, लोग मेरे बताये हुए मार्गपर चलते भी हैं या नहीं। मेरा परिश्रम सफल हुआ या नहीं। एक पक्षीका रूप धारण करके वे उड़े और वहाँ गये जहाँ वैद्योंका बाजार था। एक वृक्षपर बैठकर पक्षीने ऊँची आवाजमें कहा। 'कोऽरुक्।' अर्थात् 'रोगी कौन नहीं ?' एक वैद्यने पक्षीको देखा, इसकी बातको समझा, बोला—'जो च्यवनप्राश खाता है।' एक और बोला—'नहीं, जो चन्द्रप्रभावटी खाता है।' तीसरा वैद्य बोला—'जो बंग भस्म खाये, वही आरोग्य है, वही अधिक स्वस्थ है।' चौथे वैद्यजी बोले—'ये सब बातें गलत हैं। जबतक लवणभास्कर चूर्ण नहीं खाओगे, तबतक पेट ठीक नहीं होगा।' चरकने यह सब कुछ सुना तो दुःख हुआ उन्हें। आश्चर्यके साथ उन्होंने सोचा—'मैंने इतना बड़ा शास्त्र रचा तो क्या मनुष्यके पेटको दवाइयोंका गोदाम बना दिया जाय ? मेरा परिश्रम निष्फल हो गया। कोई भी कुछ भी सीखा नहीं।' इससे दुखी होकर वे उड़े। कई स्थानोंपर गये। हर स्थानपर उन्होंने कहा—'कोऽरुक्।' कहीं भी ठीक उत्तर न मिला।

अन्तमें दुखी होकर एक उजाड़ सुनसान स्थानपर जा बैठे, एक सूखे वृक्षकी शाखापर। इसके पास ही एक नदी बहती थी। नदीसे नहाकर प्रसिद्ध वैद्य श्रीवाग्भट्ट महाराज बाहर आ रहे थे। चरकने उन्हें पहचाना, पुकारकर कहा—

'कोऽरुक् ।' वाग्भट्ट चलते-चलते रुक गये । आँख उठाकर पक्षीकी ओर देखा । बोले—'हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक् ।' चरक इन शब्दोंको सुनते ही वृक्षसे नीचे आ गये । पक्षीरूप छोड़कर वाग्भट्टके समक्ष खड़े हो गये ।—'तुम ठीक समझे हो, वैद्यराज !'

परंतु इस 'हितभुक्', 'मितभुक्', 'ऋतभुक्'का अर्थ क्या है ? अर्थ इस प्रकार है और जो व्यक्ति स्वास्थ्यके इच्छुक हैं, वे इन शब्दोंको अपने घरकी दीवारोंपर लिखवा लें । हर समय इनका ध्यान रक्खें, हर समय इनपर विचार करें, हर समय उस उपदेशका पालन करें, जो इन शब्दोंमें दिया गया है—'हितभुक्-मितभुक्-ऋतभुक् ।'

'हितभुक्'का अर्थ है, ऐसी वस्तुएँ खाइये जो आपके शरीरके लिये हितकर हैं—अच्छी हैं । केवल खानेके लिये मत जियें, जीनेके लिये खायें । जिह्वाके स्वादमें फँसकर पेटमें कूड़ा-करकट न भरते जायँ । यह सोचकर खायँ कि जो खाते हैं, उससे लाभ क्या होगा ?

यह जिह्वा बहुत नटखट है । नाना प्रकारके स्वाद ढूँढ़ती है । नाना प्रकारकी वस्तुएँ माँगती है । कभी कहती है कि गोल गप्पे खाऊँ, कभी कहती है, जलजीरा पियूँ, कभी कहती है, लाल मिर्चोंका अचार खाऊँ, कभी कहती है, इमलीकी चटनी चाटूँ । आप हर प्रकारकी स्वादवाली वस्तुएँ खाइये, परंतु यह सोचकर खाइये कि क्या वे आपका हित करेंगी ? आपके शरीरके लिये लाभदायक होंगी ? एक स्थानपर तले हुए बैंगन पड़े हैं । आलूके गरम-गरम पकोड़े रक्खे हैं, लाल-लाल चटनी पड़ी है—इमलीकी चटनी, आमकी चटनी, टमाटरकी चटनी और पता नहीं कितने प्रकारकी चटनी हैं । ये सब वस्तुएँ पड़ी हैं । खाइये, पर उस समय, जब पता हो जाय कि इनके खानेसे लाभ होगा । यदि स्वयं पता नहीं तो किसी वैद्यसे पूछ लें । केवल स्वादके लिये खाना आरम्भ न कर दें । ऐसी वस्तुएँ खायें, जिनसे शरीरको लाभ हो । मलाई, दूध, दही और मक्खन खायें । वे वस्तुएँ प्रयोग करें, जिनमें केवल जिह्वाको स्वाद न आये, शरीरको भी स्वाद आये ।

परंतु मलाई खायँ तो कितनी ? यदि आप दो सेर मलाई खा जायँ, तीन सेर रबड़ी पेटमें डाल लें या डेढ़ सेर मक्खन ही चट कर जायँ तो इससे शरीरको लाभके स्थानपर हानि होगी । इसीलिये वाग्भट्टने दूसरी बात कही—'मितभुक्' । अच्छी वस्तुएँ खायें, परंतु थोड़ी खायँ । मर्यादामें रहकर खायँ । मर्यादासे अधिक दिया हुआ अमृत भी विष हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

(६ । १७)

अच्छी वस्तु खायें । उचित मात्रामें खायें । पेटमें चार रोटियोंकी जगह हो, तो दो रोटियाँ खायें । दो रोटियोंकी जगह पानी और हवाके लिये रहने दें । इसको कहते हैं—'उचित खाना ।'

लाहौरमें था एक दुर्गा मोटा । एक ताँगेमें अकेला बैठता था, आधा आगे आधा पीछे । युद्धके दिनोंमें राशन आरम्भ हुआ तो उसने प्रार्थना की कि राशनके आटेसे जितनी रोटियाँ बनती हैं, उससे मेरा निर्वाह नहीं होता । सर सिकन्दर हयातने उसे अपने पास बुलाया । उससे कहा—'आज मैं देखूँगा तू कितना खाता है ।' नौकरोंको आज्ञा दी कि वे सेर भर आटेकी रोटियाँ बनायें । बनी रोटियाँ दुर्गा सारी खा गया । बोला—'अभी तो आधी दूर पहुँचा हूँ, इतनी ही रोटियाँ और हों तो भूख मिटेगी ।'

सो मेरे भाई ! इस प्रकारसे खानेका लाभ क्या ? इतना खायँ, जितना पच जाय; इससे अधिक खायँगे तो हानि होगी । कश्मीरमें एक बार किंगकांग नामका पहलवान आया था । लोगोंने बतलाया कि वह प्रातः नाश्तेमें तीन दर्जन अण्डे खाता है, दो डबल रोटियाँ खाता है, एक पाव मक्खन और एक बाल्टी चाय । और फिर इसके बाद दोपहरको भी इसी प्रकार खाता है । शामको भी, रात्रिको भी । पूछा गया—'इतना खाकर करता क्या है ?' पता चला कि 'कुश्तीमें दूसरोंको गिरा देता है ।' जो इतना खायेगा वह दूसरोंको गिरा देगा ही; उन्हें उठानेका कार्य उससे न हो सकेगा ।

अन्ततः इस प्रकार खानेका लाभ क्या है ? हर समय खाओ, खाओ, खाओ । क्या इसीलिये बना है मनुष्य ? यह प्रातःको चाय, फिर बिस्तरेमें चाय, फिर काफी और फिर चाय, और फिर चाय, और फिर चाय पी, चाय पी । इसके ही लिये क्या मानव दुनियामें आया था ? अरे भाई ! पेटकी यह डेगची है न, इसमें एक सीमासे अधिक नहीं आता । किस समय, क्या, कितना डालना चाहिये, यह सोचकर डालें । हर समय डालते न चले जायँ ।

एक मा दाल बना रही थी। चूल्हेपर डेगची रखकर दो मुट्ठी दाल डेगचीमें डाल दी। आग जलने लगी। दाल अभी कुछ ही पकी थी कि दो अतिथि आ गये। उसने दो मुट्ठी दाल डेगचीमें फिर डाल दी। अभी यह दूसरी दाल अधपकी ही थी कि तीन अतिथि और आ गये। उसने तीन मुट्ठी दाल और डेगचीमें डाल दी। अब बतावें इस दालका क्या बनेगा? क्या वह कभी पकेगी? क्या वह कभी ठीक होगी? कुछ बहुत अधिक पक जायगी, कुछ थोड़ी पकेगी, कुछ कच्ची रह जायगी। यह पेट भी तो डेगची है। हर समय इसमें डालते जायँगे तो हानि होगी। इसलिये वाग्भट्टने कहा—'मितभुक्।' खायँ अवश्य, थोड़ा खायँ, मर्यादाके अनुसार खायँ।

परंतु केवल 'हितभुक्' और 'मितभुक्'से कार्य नहीं बनता। मनुष्य यदि ऊपर उठना चाहता है, इस जीवनको उस लक्ष्यकी ओर ले जाना चाहता है, जिसके लिये यह मिला है, तो आवश्यक है कि वह 'ऋतभुक्' भी बने। अच्छी वस्तुएँ खाय, थोड़ी खाय, परंतु वे ही वस्तुएँ खाय जो उत्तम कमाई—न्यायके पैसेसे पैदा की गयी हों। कोई वस्तु सच्ची कमाईसे मिली या नहीं, इसका बहुत-से मनुष्योंको पता नहीं लगता। जो लोग सदा पापका अन्न खाते रहे हों, उन्हें पाप और पुण्यमें अन्तर ही दिखायी नहीं देता। सफेद चादरपर लगा हुआ धब्बा दिखायी देता है; हम कहते हैं धब्बा लग गया है; परंतु काले कम्बलपर लगा हुआ दाग किसे दिखायी देता है? वह तो साधनसे, ज्ञानसे, प्रयत्नसे ज्ञात होता है।

पूज्य महात्मा हंसराजजी एक बार हरिद्वारके मोहन-आश्रममें ठहरे हुए थे। एक वानप्रस्थी उनके पास ही एक कमरेमें रहता था। एक दिन वह वानप्रस्थी महात्माजीके पास आया और जोर-जोरसे रोने लगा। महात्माजीने पूछा—'क्या हुआ आपको?' वह बोला—'मैं लुट गया महात्माजी! मेरी उम्रभरकी कमाई नष्ट हो गयी।' महात्माजी बहुत घबराये। पूछनेपर पता लगा कि वह वानप्रस्थी पिछले कई वर्षोंसे ईश्वरभक्तिके मार्गपर चलता हुआ ध्यान और उपासनाकी सीढ़ीतक पहुँच चुका था। रात्रिके समय अपने कमरेमें बैठ जाता वह। भगवान्‌का ध्यान करता; ईश्वरकी शीतल ज्योति उसे दिखायी देती, उसमें आनन्दसे मस्त होकर वह घंटों बैठा रहता; परंतु कल रात उसके साथ एक अद्भुत घटना घटी। रोते हुए उसने कहा—'मैं ध्यानमें बैठा था महात्माजी! तो ऐसा प्रतीत हुआ कि रोशनीमें लाल दुपट्टेवाली एक नौजवान लड़की खड़ी है। मैंने घबराकर आँखें खोल दीं। समझा, कुछ भूल हो गयी है। फिर प्राणायाम किया, फिर ध्यानसे ज्योतिको देखा, परंतु वह लड़की अब भी वहीं थी। मैं उसे जानता नहीं, परंतु बार-बार वह मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। मैंने बार-बार मुँह-हाथ धोकर प्राणायाम करनेका प्रयत्न किया, बार-बार उसे हटानेका प्रयत्न किया, परंतु रोशनीमें इसके अतिरिक्त और कुछ मुझे दिखायी नहीं देता। मेरी तो उम्र-भरकी कमाई लुट गयी! मैं तो कहींका रहा नहीं। पता नहीं, मुझे क्या हो गया है!' वह कहता जाता था और रोता जाता था। महात्माजीने पूछा—'किसी बुरे व्यक्तिकी संगतिमें तो नहीं बैठे! कोई बुरी पुस्तक तो नहीं पढ़ी?' उसने कहा—'ऐसा कुछ नहीं किया मैंने।' महात्माजीने कहा—'कल तुम आश्रमसे बाहर तो गये होगे!'

वह बोला—'हाँ, गया था, एक भंडारेमें। एक सेठ साहब आये हैं, उन्होंने भंडारा किया था, वहाँ खाना खाने गया था।' महात्माजीने कहा—'जाकर पता लगाओ, वह सेठ कौन है, क्यों उसने भंडारा किया है?' वानप्रस्थी गया। पता लगाकर उसने बताया कि 'सेठ अमुक शहरका रहनेवाला है (उसका नाम लेना नहीं चाहता)। वहाँ उसने अपनी नौजवान बेटीको एक बूढ़ेके हाथ दस हजार रुपयेमें बेच दिया है। दो हजार रुपया लेकर वह हरिद्वार आया है कि पापका प्रायश्चित्त कर दें।' महात्माजीने इस बातको सुनकर कहा—'यही वह नौजवान लड़की है, जो तुम्हें दिखायी देती है। तुमने जो कुछ खाया, वह पुण्यभाव-से दिया हुआ दान नहीं था, पापकी कमाईका एक भाग है। उस हतभाग्य लड़कीका मूल्य! जबतक यह अन्न तुम्हारे शरीरसे नहीं निकलेगा, तबतक उसी दुखी लड़कीका दिखायी देना बंद न होगा।' यह है दूसरेके पापका अन्न खानेका परिणाम। जो स्वयं पापकी कमाई करते हैं, उनकी दशा तो बहुत ही बुरी होती है। इससे आत्माका पतन होता है। आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पीछे हट जाता है। वह पाप-को पुण्य मानने लगता है। इसीलिये वाग्भट्टने कहा, केवल 'हितभुक्' और 'मितभुक्' होना ही पर्याप्त नहीं, मानव यदि हर प्रकारके रोगोंसे बचना चाहता है तो उसे 'ऋतभुक्' भी अवश्य होना चाहिये।

इस प्रमादका अन्त कब होगा ?

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

संसार बहुत आगे बढ़ गया है। अब पृथ्वीपर उसकी महत्त्वाकाङ्क्षाकी पूर्ति नहीं हो रही है। उसे आकाशके ग्रह-नक्षत्र-तारे अपनी मुट्ठीमें करने हैं।

और स्वयं पृथ्वी उसकी मुट्ठीसे निकलती जा रही है। पैर आगमें जल रहे हैं। सिर आकाशकी ओर उड़ा जा रहा है।

धन-वैभवकी सीमा नहीं रही। सन् १९६७ में संयुक्त-राज्य अमेरिकामें ८,००,००० नये मकान बने, जिनमें अनेक परिवार रह सकते हैं। ९६ अरब रुपये नये मकानोंके साज-सज्जा, फर्नीचर आदिपर खर्च हुए और ७०० अरब रुपये नयी मोटरकार तथा यातायातकी अन्य सुख-सुविधाओंपर !

पश्चिमी जर्मनी आज संसारमें सबसे प्रगतिशील व्यवसायी देश है। फ्रांस यूरोपके अति धनी देशोंकी श्रेणीमें है। वैभव तथा विलासकी वहाँ इतनी चहल-पहल है कि केवल पेरिसमें रात्रिमें १५०० क्लबोंमें नाच-रंग होता रहता है।

और दूसरी ओर जीवनकी सुख-सुविधाओंसे ऊबकर ४ लाख पुरुष तथा २ लाख स्त्रियाँ पश्चिमी जर्मनीमें भयंकर मदकची तथा नशाखोर बन गयी हैं। फ्रांसमें हर साल प्रति एक लाख आबादी पीछे १० फ्रेंचमैन मादक द्रव्योंके सेवनके कारण प्राणसे हाथ धो रहे हैं। संयुक्तराज्य अमेरिकामें ३,५०,००० व्यक्ति प्रतिवर्ष नशाखोरीके कारण तड़प-तड़पकर प्राण दे रहे हैं। लगभग १,५०,००,००० अमेरिकन स्त्री-पुरुष सभ्यताके दौरमें अपनेको न सँभाल सकनेके कारण चरस, गाँजा, कोकीनके लती-सेवक बन गये हैं। सोवियत रूसमें लोग प्रतिवर्ष लगभग २० अरब रूबल (रूसी सिक्का, लगभग ६० अरब रुपये) की 'वोदका' शराब पी जाते हैं। संयुक्तराज्य अमेरिकाने सन् १९६७में ३२,५०,००,००० गैलन (एक गैलनमें ८ बोतल) शराब पी डाली !

पारिवारिक जीवन

स्त्री-पुरुषोंकी नशाखोरी तथा रात-दिन पेटेंट दवाएँ नींद लानेवाली या उत्तेजना पैदा करनेवाली दवाओंके सेवनके कारण प्रति वर्ष संयुक्तराज्य अमेरिकामें लगभग २,५०,००० दोषी बच्चे पैदा हो रहे हैं—किसीके आँख नहीं, नाक नहीं, बारह अँगुली, ९ अँगुली, तीन कान आदि—तथा इस समय १,१०,००,००० अमेरिकन बच्चोंमें ऐसा कोई-न-कोई दोष है, दोष-पूर्ण बच्चोंके शारीरिक दोषोंकी सूची १,०००के ऊपर है। इंगलैण्डमें प्रति ४० नवजात शिशु पीछे १ (एक) दोषी होता है।

गरीब भारतमें अभी विदेशी मादक द्रव्य कम प्रवेश कर पाये हैं, फलतः बम्बई-ऐसे नगरमें प्रति ११६ नवजात शिशुओंमें केवल एक दोषपूर्ण होता है, जब कि हांगकांगमें ८७ पीछे १, स्पेनकी राजधानी मैड्रिडमें ७५ पीछे १ तथा आस्ट्रेलियाकी राजधानी मेलबोर्नमें ५३ पीछे १ अपाहिज बच्चा पैदा होता है।

सभ्यता तो इतनी बढ़ी, पर परिवार नष्ट हो रहा है। सन् १८९०में संयुक्तराज्य अमेरिकामें ५,३०,९३७ नये विवाह हुए तथा ३१,७३५ तलाक (विवाह-विच्छेद) हुए। यानी १६.७३ विवाह पीछे १ तलाक। सन् १९६७में १९,१३,००० नये विवाह हुए तथा ५,३४,००० तलाक, यानी विवाह-विच्छेदमें १६०० प्रतिशतकी वृद्धि तथा नये विवाहमें २६० प्रतिशतकी वृद्धि। आज ३.५८ विवाहके पीछे एक तलाक होता है। इसी देशमें इस समय ३०,००,००० स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो विवाहित हैं, पर पतियोंको छोड़ चुकी हैं।

विवाह-विच्छेदकी यह संख्या इसी अनुपातसे बढ़ती रही तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि अगले बीस-तीस वर्षोंमें यह कितना गुना अधिक बढ़ जायगी। विवाहकी इस बढ़ती हुई अपवित्रताका परिणाम है कि संतान भ्रष्ट, दुराचारी, अनैतिक तथा लम्पट होती जा रही है। १८ वर्ष तककी उम्रवाले हर छः अमेरिकन लड़कोंमेंसे एक कम-से-कम एक बार जेलकी हवा खा चुका है।

आकाश-विजयी देशोंकी पृथ्वीपर पराजयका इससे अधिक और क्या उदाहरण होगा !

प्रतिक्रिया

भौतिक सभ्यताकी चकाचौंधकी प्रतिक्रिया हो रही है। जो लोग भारतीय साधुओंको गँजेड़ी, नशेबाज बताकर

उनकी खिल्ली उड़ाते थे, वे आज अपने देशमें गाँजा तथा चरसको रोकनेके लिये बहुत चिन्तित हैं। जो भारतीय विवाहको 'मूक कन्याका बलिदान' कहते थे, वे खुलकर अपनी 'मुक्त विवाह-प्रथा'का विरोध कर रहे हैं। सगोत्री तथा दूध-बरावबाले विवाहके विरुद्ध वैज्ञानिक लेखोंका ताँता लग गया है। भारतीय ज्योतिषकी सबसे अधिक खिल्ली उड़ानेवाले देश संयुक्तराज्य अमेरिकामें "टाइम" (२१ मार्च, १९६९) पत्रके अनुसार केवल जन्मकुण्डली बनाने तथा पढ़नेका पेशा करनेवालोंकी संख्या १०,०००से ऊपर है। १,७५,००० ज्योतिषी इस कार्यको उपव्यवसाय-के रूपमें कर रहे हैं। भूत-प्रेत-बाधाको दूर करनेवाले एक या डेढ़ लाख हैं। ३०६ समाचारपत्र दैनिक भविष्यवाणी छापते हैं।

रूसके तानाशाह स्तालिनकी बेटी स्वेतलाना अपने पति ब्रजेशसिंहका अस्थि-प्रवाह करने दिसम्बर, १९६६में भारत आयीं और कालाकांकरमें गङ्गाकी निर्मल गोदने उन्हें इतना प्रभावित किया कि उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "अभीतक मैं 'मैं' थी। गङ्गाने मुझे वह वस्तु दी जो सोवियत रूसमें प्राप्त नहीं है। मुझे मेरा ईश्वर मिल गया।"

भारतके नये पढ़े-लिखे लोग, राजनैतिक नेता तथा शासन जिस ईश्वर, भारतीय धर्म, पुराण तथा स्मृतियोंको निरर्थक बकवास समझता है, जिस देशमें हिंदीके कुछ पत्र तथा पत्रिकाएँ भी हिंदू-धर्मकी खिल्ली उड़ाती रहती हैं; जिस देशके एक बंगाली सज्जनने, लेखक मार्टिन इवानके कथनानुसार अपने एक बयानमें कहा है कि 'वे कभी अपने हिंदू-धर्मपर अभिमान नहीं कर सकते; क्योंकि उसमें तो ईश्वर सूअरका रूप लेकर पैदा हो सकता है'—उसी देशके धर्मपर आज समूचे सभ्य संसारकी दृष्टि जा रही है। हमारे अवतारोंको सृष्टिका महत्त्वपूर्ण विकासके रूपमें पश्चिमके विद्वान् भी आदर करने लगे हैं।*

ईश्वर है या नहीं ?

जिस पहेलीको हमारे ऋषियोंने कबका सुलझा लिया था, उसे आज विज्ञानके द्वारा हल किया जा रहा है। हर्बर्ट आर्मस्ट्रांगने हालमें लिखा है—

'बिना कर्त्ताके कार्य कैसे होगा ? बिना रचयिताके रचना कैसे होगी ? यदि ईश्वर नहीं है तो फिर है क्या ? आदमी अपनेको बुद्धिमान् समझता है। उसे हर बातका सबूत चाहिये। वह ईश्वरको खिड़कीके बाहर फेंक देना चाहता है। ईश्वरके स्थानपर विज्ञानको अपना त्राता बनाना चाहता है। विज्ञान सब कुछ कर सकता है, पर यह नहीं बतला सकता कि जीवन किसने दिया ? जिसने प्राण दिया, वही ईश्वर है और आजकी भ्रष्ट सभ्यताका उद्धार ईश्वर ही करेगा।'

विज्ञानने भी बड़े मार्केकी बातें भगवान्की अपार लीलाके प्रमाणमें ढूँढ़ निकाली हैं। यह कार्य तीन महा-वैज्ञानिक कर रहे हैं—डा० कोर्नबर्ग, डा० गूलियन तथा डा० सिनशीमर।

महामायाकी अद्भुत लीला ! इस समय संसारकी आबादी २,७५,००,००,००० है। पुरुषके एक कण वीर्य तथा स्त्रीके एक अणु रजसे यदि एक शरीर बनता है तो ५,५०,००,००,००० कणसे इतनी बड़ी आबादी तैयार हुई। इन कणोंकी जो लंबाई-चौड़ाई है, उसके अनुसार पाव भर दूध रखनेवाली शीशीमें ये बंद करके रक्खे जाते हैं और इतनी छोटी-सी मात्रासे इतनी बड़ी सृष्टि !

इतना ही नहीं, एक अंड-रज इतना छोटा होता है कि यदि २५० एक पंक्तिमें किये जायँ तो केवल एक इंच लंबे होते हैं। और इस रजसे बना एक मानव-शरीर अपनेमें १०, ००, ००,००,००,००,००० कण (सेल)

* अपनी संस्कृति-सभ्यता और वर्तमान परिस्थितिसे घबराये हुए सैकड़ों-सैकड़ों अमेरिकन नर-नारी भारतीय वैष्णव साधु श्रीभक्तिवेदान्त सरस्वतीके द्वारा संस्थापित 'Krishna Cousclousness' संस्थाके सदस्य बन रहे हैं—मांस, अंडे, शराब, चाय, नशेकी दवा आदिके परित्यागके साथ 'हरे कृष्ण' आदि सोलह नामोंके जप तथा कीर्तनका नियम ले रहे हैं। वहाँकी सरकारने स्वामीजीकी उस देशके युवकोंका सुधार करनेके कार्यके लिये बड़ी प्रशंसा की है। वे युवक शिखा रखते हैं। अमेरिकामें श्रीराधाकृष्णके कई मन्दिर बन गये हैं। हालमें लन्दनमें भी इनके द्वारा श्रीहरिनाम-कीर्तनका प्रचार हो रहा है। इसका विस्तृत वर्णन अगले अङ्कमें छापनेका विचार है—सम्पादक

धारण किये हुए है। मानव-शरीर जिन कणोंसे, अणुओंसे बना है, यदि उनको एक पंक्ति में रक्खा जाय तो ६३,००,००० मील लंबा होगा। कितना महान् है हमारा यह शरीर, और हम उसी वीर्य तथा रज और शरीरका कितना दुरुपयोग करते हैं! इन अणुओंकी कोठरियोंकी मुटाई केवल ०.००००७५ मिलीमीटर है। यानी ३३, ३३,००० कोठरियाँ एक इंचके बराबर! जरा कल्पना कीजिये कि आपके शरीरमें क्या है!

डा० मेहरान गुलियनने बड़ी अद्भुत बातें खोज निकाली हैं। हमारे शरीरका पोषण इन्हीं अणु-कोठरियोंमें उत्पन्न होनेवाली जीवनी-शक्ति—रससे हो रहा है और प्रत्येक कोठरीमें ढाई लाख प्रोटीन- (रस) उत्पादक तत्त्व-अणु भरे पड़े हैं। प्रतिक्षण इन नन्हीं-से-नन्हीं कोठरियोंमें कितना काम हो रहा है? बड़े-से-बड़े शहरोंकी चहल-पहलसे ज्यादा चहल-पहल हमारे शरीरके भीतर हो रही है। शरीरके भीतरकी अँतड़ियोंको यदि एक पंक्तिमें बिछा दिया जाय तो ६००० मील लंबी फैल जायगी। और यह सब समेटे हुए हैं हम!

और हर अणु-कोठरीमें जो रसतत्त्व है, वह अद्रुजन अणुसे ६४,५०० गुना अधिक भारी है—वजनी है तथा इसमें अद्रुजन, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सिजन, लोहा आदिके १०,००० तत्त्व वर्तमान हैं।

रज तथा वीर्यके मिलनसे जब गर्भपिण्ड बनता है तो उसमें दति-पत्नीका रूप, रंग, स्वभाव सब कैसे आ जाता है, जब कि इस 'मिलावट' के समय एक सम्भोगमें ८३,८८,६०८ अणु-कोठरीका व्यय होता है। ऐश्ले मौंटेगूने खोज निकाला है कि लगभग ७०, ००,००,००,००,००,०० कणोंके अपव्ययके बाद कहीं एक बार गर्भाधान होता है!

रोग-दोष

और हम इतना बड़ा उत्पात शरीरके भीतर होनेपर भी स्वस्थ कैसे रहते हैं! बीमारी शरीरके भीतर किसी विषैले तत्त्वके कारण पैदा होती है। सन् १९१८में विश्वव्यापी प्लेगसे २½ करोड़ मृत्यु संसारमें हुई थी। हर साल लाखों बच्चे 'पोलियो' बीमारीके शिकार होते हैं, पर पोलियो (बच्चोंका हाथ-पैर सूख जाता है) के कीटाणु एक अणु-कोठरीमें चन्द घंटेमें १०,००० की संख्यामें बन सकते हैं। ये इतने छोटे हैं कि 'पिंग पांग' खेलकी छोटी-सी गेंदमें १,०००,०००,०००,०००,००० ऐसे कीटाणु बंद किये जा सकते हैं।

रोगके कीटाणु कितनी आसानीसे पैदा हो जाते हैं, इसका कोई कारण विज्ञान नहीं बतला सकता। बहुत छानबीन करनेपर भी मानव-शरीरके भीतर जो कुछ है, हो रहा है, उसका वास्तविक कारण विज्ञानकी समझके परे निकला। अन्तमें बड़े धुरंधर वैज्ञानिकोंने स्वीकार किया है—

'विज्ञान एक सीमातक ही खोज कर सकता है। जब वह समझ सीमापर पहुँच जाती है तो थककर विज्ञान कहता है—कि कोई महान् शक्ति, जिसे सृष्टिकर्ता या ईश्वर कहना होगा, इस महान् रचनाका कर्त्ता है तथा वही सब रहस्य जानता है।'

अब निरीश्वरवादीके पास कौन-सा तर्क रह गया ईश्वरकी सत्ता अस्वीकार करनेके लिये?

कल्कि-अवतार

डा० लाबसांग रम्पा तिब्बतके लामा हैं। लन्दनमें रहते हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथामें 'त्रिनेत्र'की बड़ी महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है। उनकी हालमें प्रकाशित 'जीवनके अध्याय' पुस्तकमें सिद्ध किया गया है कि पश्चिमकी सभ्यताका शीघ्र अन्त होगा तथा भारतीय ज्ञानका संसारको सहारा लेना पड़ेगा। कुण्डलिनीको जाग्रत् कर विश्वका मर्म समझनेवाला भारतीय साधु ही संसारका रहस्य जानता है तथा कल्कि-अवतारकी भारतीय उक्ति शीघ्र चरितार्थ होगी। सन् १९८५ तक कल्कि-अवतार होगा और तभी उस अवतारके द्वारा ईश्वर, नैतिकता, श्रद्धा, भक्ति तथा साधुजीवनका पुनः प्रादुर्भाव होगा।

शिवभक्त कवि श्रीदेवीसहायजी

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

श्रीदेवीसहायजी कवि थे और थे आशुतोष भगवान् विश्वनाथके नैष्ठिक भक्त । इन्होंने बाबा विश्वनाथकी कृपाका प्रत्यक्ष फल देखा था । ये कुछ दिनोंतक नेत्र-रोगसे पीड़ित थे । रोग धीरे-धीरे बढ़ता गया और ये अन्धे हो गये । छः वर्षतक अन्धे ही रहे, किंतु बाबा विश्वनाथकी कृपासे इन्हें पुनः दृष्टिशक्ति प्राप्त हो गयी और ये पूर्ववत् देखने लगे । इस घटनाका उल्लेख इनकी पुस्तक 'शैव-मनोरञ्जिनी'*के आठवें पृष्ठपर इस प्रकार किया गया है—

'पूर्वमें महाराज ६ वर्षतक अन्धे रहे । तब इस पदको महाराजजीने बनाया । तब शंकरकी कृपासे नेत्र खुल गये ।'

बाबा विश्वनाथसे की गयी प्रार्थनाका पद इस प्रकार है—

वाराणसी बसाओ शंकर वाराणसी बसाओ रे ।
बहुत दिननसे आस लगी है, अब क्या देर लगाओ रे ॥
मणिकर्णिका घाटके ऊपर गंगा नित्य नहाओ रे ।
तारकेश्वर पूजन करिके ढुँढिराज पहँ जाओ रे ॥
भैरोंनाथ पुरीके मालिक तिनके दर्शन पाओ रे ।
अन्नपूर्णा पूरण करिहैं चरन सरन चित लाओ रे ॥
विश्वनाथ-पद-पूजन करिके सभा जाय जस गाओ रे ।
ज्ञान बाउरी करौ आचमन आवागमन मिटाओ रे ॥
दीनबंधु निज नाम तजो नहिं नयनन रोग नसाओ रे ।

× × ×

इस पदको एक प्रकारसे 'ऐतिहासिक' पद कहा जा सकता है; क्योंकि इसी पदसे प्रभावित होकर पार्वतीवल्लभ बाबा विश्वनाथने अपने भक्त श्रीदेवीसहायजीको नेत्र-ज्योति प्रदान की थी ।

'पिताके प्यारसे माँकी मार भी अधिक प्यारपूर्ण होती है'—यह लोकोक्ति सत्य भी है । माता स्वाभाविक ही करुणामयी होती है । वह अपनी शक्तिभर संतानकी किसी इच्छाको अधूरी नहीं छोड़ना चाहती । बच्चेकी छोटी-से-छोटी लालसाके लिये भी वह व्याकुल हो जाती है । और इसी कारण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने इष्टदेव राघवेन्द्र सरकारकी कृपा-प्राप्तिके लिये माता जानकीसे प्रार्थना की थी—

कबहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ ॥

ठीक इसी प्रकार श्रीदेवीसहायजीने उपर्युक्त पदके अन्तमें माता पार्वतीसे प्रार्थना की—

देवीसहाय पुकारत आरत गिरिजा तुम समझाओ रे ॥

इनका जन्म कब और कहाँ हुआ, यह कहना शक्य नहीं; किंतु इनकी पुस्तक 'शवमनोरञ्जिनी' संवत् १९४४ में छपी थी । पुस्तकके प्रथम पृष्ठपर लिखा है—

'शैवमनोरञ्जिनी'

श्री ६ वाजपेयी देवीसहायकृत

''जिसे रसिकगणके प्रमोदार्थ ग्रन्थकर्ताके आज्ञानुसार पण्डित मोतीराम दुबे औदीच्यने पं० रामनाथ दुबेके द्वारा काशीस्थ काशिका यन्त्रालयमें छपाया ।''

इससे इतना ही विदित होता है कि आप जातिके ब्राह्मण [वाजपेयी कुलोद्भव] थे और संवत् १९४४ के आस-पास वर्तमान थे ।

श्रीदेवीसहायजीके पदोंसे विदित होता है कि ये परम धार्मिक एवं पुण्यपुरुष थे । श्रीगुरु-चरणोंमें इनकी अत्यधिक श्रद्धा थी और श्रीगुरुके आदेशसे ही इन्होंने पद्य-रचना प्रारम्भ की और उनकी कृपा एवं प्रेरणासे ही इनके हृदयमें भक्तिका अङ्कुर उत्पन्न हुआ । निम्नाङ्कित पदकी अन्तिम पङ्क्तिसे यह स्पष्ट प्रकट होता है । पद इस प्रकार है—

गौरीपति सों प्रेम हमारो ।
उनहीं कौ नाम-सुधारस पीवत लगत मोहिं अति प्यारो ।
उनहीं के चरणकमलके ऊपर मन मेरो मतवारो ॥
छिन-पल मोकों बिसरत नाहीं फणिगण-भूषणवारो ।
'देवीसहाय' कह्यो गुरु मोसे उर अंतरमें निहारो ॥

* 'शैवमनोरञ्जिनी'की एक प्रति 'नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी'में प्राप्य है । उक्त प्रतिसे कुछ पद और श्लोक छाँटकर प्रिय भाई श्रीचन्द्रशेखरजी मिश्रने मेरे पास भेजकर इस भक्त कविके सम्बन्धमें 'कल्याण'में लिखनेकी प्रेरणा की । एतदर्थ मैं भाई श्रीचन्द्रशेखरजीका आभार स्वीकार करता हूँ ।

—शिवनाथ दुबे

भक्त-कविके मनमें धीरे-धीरे भूतभावन भोलेनाथकी प्रीति दृढ़ होती गयी। उनका मन भगवान् शंकरकी पवित्रतम पुरी वाराणसीमें, बाबा विश्वनाथके चरणकमलोंमें निवास करनेके लिये व्याकुल रहने लगा। किसी प्रकार अपने आराध्यकी पावन पुरीमें निवास करनेका अवसर प्राप्त हो जाय, इसके लिये वे रह-रहकर छटपटा उठते। इसके लिये उन्होंने बार-बार माता पार्वतीसहित बाबा विश्वनाथसे अन्तर्हृदयसे कातर प्रार्थना की।

तुम बिन शंकर कोई न मेरा।
भवसागर को पार न जानौं नाव मिलै नहिं बेरा॥
मोको नाथ जानि निज सेवक निज पुर देहु बसेरा।
'देवीसहाय' दरस के लोभी उमासहित करौ फेरा॥

दयामय श्रीमहादेव उनके अन्तरकी व्याकुल प्रार्थनासे द्रवित हुए और श्रीदेवीसहायजीकी लालसा पूरी हुई। उन्हें उनके आराध्यकी वाराणसीपुरीमें निवास मिल गया। माता पार्वती और बाबा विश्वनाथने उन्हें कृपापूर्वक बुला लिया। तब श्रीदेवीसहायजी वृद्ध हो चले थे। इसे उन्होंने निम्नाङ्कित पदमें स्वयं स्वीकार किया है—

अब मोहिं गौरीनाथ बुलायो॥
महाराज-महरानीजीने लिखिकर पत्र पठायो।
बाँचत पत्र पवित्र भयो मन भाम-ग्राम बिसरायो॥
आनँद बन-बीथिनकी शोभा चाहत मोहिं दिखायो।
'देवीसहाय' दरस अपने को चौथेपन अपनायो॥

वाराणसी पहुँचनेपर उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वहाँ वे प्रतिदिन नियमित रूपसे मणिकर्णिका-घाटपर स्नान करते और भगवान् शंकरका गुणगान करते हुए ढुंढिराज गणेश, मैया अन्नपूर्णा एवं बाबा विश्वनाथका दर्शन और पूजन करते और फिर बाबा विश्वनाथके मन्दिरमें स्थिर बैठकर उनका गुणगान एवं उनकी प्रार्थना करते। तन्मयतासे गाये गये उनके कुछ पद इस प्रकार हैं—

सो गौरीपति नाथ हमारा॥
जाको ज्योति सकल सुर बरनत वेदन ब्रह्म विचारा।
सो महेश त्रिभुवनपति स्वामी मैन नैन सों जारा॥
त्रिपुरासुर तिहुँ लोक विकल किये दियो महादुख भारा।
तहँ गिरिजापति अभय किये सुर जाय असुरपति मारा॥
कर कपाल अरु शूल अभै वर देत सकल दुख टारा।
गौर सरीर अधिक छवि तामें नीलकंठ अति कारा॥
सब उर बसत सुनत सबकी शिव हैं सब जगसे न्यारा।
'देवीसहाय' पतित पावन भये जब शिव नाम उचारा॥

× × ×

जो शिव सांब चरण मन लैहैं।
तौ परिवार पवित्र होयगो कलिमल सब नसि जैहैं॥
होइहैं बिमल बिराग ज्ञान उर जीकी तपन बुझैहैं।
करिहैं कृपा जानि निज सेवक भवसागर तरि जैहैं॥
असरन सरन दीन हितकारी सो तोकों अपनैहैं।
दी हैं दृढ़ अनुराग चरणमें माया फिर न सतैहैं॥
'देवीसहाय' उमापति तोकों आनँद बनहिं बसैहैं।
तारक मंत्र सुनाय श्रवणमें आवागमन मिटैहैं॥

श्रीदेवीसहायजी निश्चय ही भाग्यवान् थे, जिन्होंने अपना जीवन सर्वेश्वरके मङ्गलमय चरणोंमें समर्पित कर दिया और उनकी कृपा प्राप्त कर ली। कविताकी दृष्टिसे भी ये सफल ही कहे जायँगे; क्योंकि इनके पदोंको आज भी बड़े प्रेमसे गाया जाता है। शहर और गाँवके कितने ही भक्त इनके पदोंको झूम-झूमकर गाते हैं। 'अब शिव पार करो मोरि नैया।' इस प्रकारके कितने ही अत्यन्त सरल और सरस पद गाते हुए आप लोगोंको सुन सकते हैं। संस्कृत और भोजपुरीमें भी इन्होंने अपने इष्टदेवकी प्रार्थना की है। यहाँ हम उनका भोजपुरी भाषाका एक पद लिख रहे हैं—

मोले बाबा दरस अब देइदऽ लागत मोर जियरवा।
बायें अंगमें गौरी बिराजे सोहै चंद्र लिलरवा॥
जटा मुकुटमें गंग छटा छवि लाजे कंठ जहरवा॥

श्रीदेवीसहायजीने अपने जीवन और अपनी रचनाका उपयोग भगवान् नीलकण्ठकी स्तुति और गुणगानमें किया, अतएव निश्चय ही वे धन्य हो गये।

विलक्षण पति-प्रेम

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

भारतीय पतिव्रता स्त्रियोंके चरित्रोंकी गौरव-गाथासे हमारे धर्मग्रन्थ सुशोभित हैं। वृन्दादेवीके पातिव्रतधर्मसे उनके पति जालन्धर दैत्य साक्षात् संहारदेव महादेवके लिये भी अजेय हो गये। पातिव्रत-धर्मके बलसे ही अत्रि-पत्नी अनसूया मैया त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवको नन्हे मुन्ने बालकोंके रूपमें परिवर्तन कर सकीं। सूर्योदय-जैसी अटल घटनाको भी रोक देनेकी शक्ति भारतीय पतिव्रतामें पायी गयी। अपने तपके प्रभावसे विष्ठा करनेवाले पक्षीको तपस्वीने वनमें भस्म किया था, यह बात घरमें बैठी पत्नीको ज्ञात हो गयी। यहाँतक कि सावित्री देवी अपने मृत-पति सत्यवान्‌को अपने पातिव्रतके प्रतापसे यमके पाशसे छुड़ा लायी।

यह महान् शक्ति इनमें क्यों और कहाँसे आयी? इस तत्त्वका विचार करना असङ्गत न होगा। श्रीमुखका वचन है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

(गीता १० । ४१)

अर्थात् जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुई जान। सभी प्रकारकी शक्तिका मूल उद्गम-स्थान प्रभु ही हैं।

वास्तवमें पतिव्रता स्त्री पतिरूपमें विराजमान भगवान्‌से ही प्रेम करती है तथा सहज ही तन, मन, धनसे सेवा करके उन्हें संतुष्ट करती है। सच्चा पति-प्रेम और प्रभु-प्रेम एक ही वस्तु है। उसके लिये प्रभु ही पतिरूपमें प्रकट रहते हैं और आनन्दसे सेवा ग्रहण करते हैं। भक्तिकी पराकाष्ठा मधुर भक्तिका नाम ही पातिव्रत-धर्म है। फिर ऐसे भक्तोंमें भगवान्‌के ऐश्वर्य-शक्ति आदि गुण प्रकट हों तो आश्चर्य ही क्या है?

पतिव्रता स्त्रीका अपने पतिसे प्रेम तथा सम्बन्ध मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही रहता है और मृत-पत्नी परलोकमें भी अपने जीवित पतिकी भलाई तथा अभ्युत्थानके लिये क्या कुछ कर सकती है! इसका उदाहरण बहुत वर्ष हुए महात्मा शिशिरकुमार घोषद्वारा प्रकाशित 'हिंदु स्पिरिच्युअल मैगेजिन'में छपा था, जिसका सार निम्न प्रकार है—

'महात्मा शिशिरकुमारके परिवारसे रायबहादुर राम शंकर सेनका, जो उस समयमें डिप्टी मैजिस्ट्रेट और बंगाली समाजके गण्यमान्य सदस्य थे, घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनके सुपुत्र गिरिजाशंकर जब विलायतसे बैरिस्टर बनकर लौटे तो उसके थोड़े ही दिनों बाद उनकी सती-साध्वी धर्मपत्नी परलोक सिधार गयी।

विलायतके प्रवासमें गिरिजा बाबूका जीवन वहाँके वातावरणके कारण अनियन्त्रित हो गया था, इसलिये अधिक समयतक बिना पत्नीके न रह सके। इन्होंने एक ईसाई महिलासे प्रेमका सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसको विवाह करनेका वचन भी दे दिया। इनके माता-पिता तथा परिवारवालोंके लिये ऐसा दूषित कर्म, जिससे धर्मच्युत होना अनिवार्य था, नितान्त अवाञ्छनीय तथा घृणास्पद था। उन्होंने हर प्रकारसे उनको समझाकर सत्पथपर लानेका प्रयत्न किया, उन्हें अपने ही धर्मकी शिक्षिता सुन्दरी कन्या दिखलायी गयी; किंतु उन्होंने अपने निश्चयको छोड़नेसे सर्वथा इन्कार कर दिया।

गिरिजा बाबू अपने व्यवसायके सुभीतेके लिये अपने माता-पितासे दूर अकेले रहते थे। एक दिन इन्होंने अपनी प्रेमिका तथा उसकी दो बहनोंको अपनी बग्गीमें साथ लेकर कलकत्तेके प्रसिद्ध 'ईडन गार्डन'में घूमनेकी योजना बनायी। वे तीनों महिलाओंको लेकर वहाँ पहुँचे। वहाँ बड़े आनन्दसे हँसते-खेलते घूमते रहे। लौटते समय जब सभी लोग बग्गीमें बैठ गये और गिरिजा बाबूने घोड़ेकी लगाम हाथमें ली तो तत्काल ही, पता नहीं क्यों, घोड़ा डरकर ऐसा सरपट भागा कि प्रयत्न करनेपर भी न रुका और अन्तमें बग्गी किसी वस्तुसे टकराकर बिल्कुल उलट गयी। गिरिजा बाबू और उनकी प्रेमिकाको गहरी चोट लगी। वे बेसुध हो गये। प्रेमिकाकी बहनोंको जरा भी चोट नहीं लगी। इस दुर्घटनाके पश्चात् गिरिजा बाबू अपने घर लाये गये और उनकी प्रेमिकाको उसकी बहनें संज्ञाहीन अवस्थामें अपने घर ले गयीं।

जब कई दिनोंतक भलीभाँति चिकित्सा होनेपर भी गिरिजा बाबूकी चेतना नहीं लौटी तो डाक्टर उनके जीवनसे निराश हो गये, किंतु पाँचवें दिन जब उनकी चेतना लौटी

तो डाक्टरोंने कहा कि 'अब आशा है—रोगी ठीक हो जायगा।' किंतु उसी रात्रिको उनके प्राणपखेरू उड़ गये।

इस दुर्घटनाके समय गिरिजा बाबूके पूज्य पिता स्वयं रोगाक्रान्त थे। वे कहीं आ-जा नहीं सकते थे। उनकी माता पुत्रकी देख-भालके लिये दिनमें कई बार उनके घर जाती। रात्रिको जब वह अपने घर आ जाती तो गिरिजाका अपना नौकर उनकी सेवामें रहता। एक दिन यह नौकर प्रातःकाल आकर उनके पितासे कहने लगा कि 'साहेब! मेरा मालिक जीवित बचेगा, इसमें मुझे भारी संदेह है; क्योंकि यद्यपि मालिक तो संज्ञाहीन हैं, किंतु उनकी मृत पत्नी रात्रिभर उनके समीप बैठी उनकी सेवा तथा उनसे वार्तालाप करती मुझे प्रत्यक्ष दीखती है।'

इधर जिस समय गिरिजा बाबूको चेतना प्राप्त होनेका समाचार उसके पिताको मिला, उसी समय एक व्यक्ति उनके पास गिरिजाकी प्रेमिकाका एक विचित्र संदेश लाया। वह कहने लगा कि "उस महिलाकी संज्ञा तो अभी नहीं लौटी; किंतु उसने उसी अचेत अवस्थामें अपने घरवालोंसे कहा कि 'जो मैं कहती हूँ, इसको लिख लो, और यह संदेश गिरिजा बाबूके पिताको अविलम्ब पहुँचा दो।"

इस संदेशका सार निम्न प्रकार है—

"मैं जब परलोकमें पहुँची तो वहाँ बहुत-से लोग थे, जिनमें गिरिजा बाबूकी मृत पत्नी भी थी। उसने मुझे देखते ही फटकारना आरम्भ कर दिया। वह कहने लगी कि "तुमने मेरे पतिको अपने रूप-लावण्यके फंदेमें फँसाकर उससे विवाह करनेकी ठानी है, यह बहुत बुरा है। क्या तुम्हें कोई भला ईसाई नहीं मिलता था? तुमने भला यह भी न सोचा कि उसका धर्म बिगाड़कर उसे नरकगामी बनाकर तुम्हें क्या मिलेगा?' उसने बताया कि 'मैंने अपने पतिको उसके निश्चयसे हटानेका पूरा प्रयत्न किया और जब वह किसी प्रकार नहीं माना तो जैसे भी हो, तुम दोनोंको पृथक् करनेके लिये मुझे यह उग्र कर्म करना पड़ा। घोड़ेको मैंने ही डरावना रूप धरकर डराया था, जिसने बग्गीको उलटा दिया।' उसने कहा कि 'मैं तुम दोनोंमेंसे किसीको मार डालना नहीं चाहती थी, इतना ही चाहती थी कि तुम्हारा शरीर ऐसा हो जाय जिससे यह विवाह न सम्पन्न हो सके।' गिरिजाकी पत्नीने बताया कि 'उसकी मुझसे कोई शत्रुता नहीं है और वह इस बातसे प्रसन्न थी कि मैं जीवित रहूँगी।' उसने यह भी बताया कि 'यद्यपि उसका पति कुछ क्षणोंके लिये स्वस्थ प्रतीत होगा; किंतु वह आज ही रातको मेरे पास आ जायगा। वह यदि संसारमें रहता तो उसके बिगड़नेका भय लगा ही रहता। मेरे पास रहकर वह मानवोंमें हीरा बन जायगा।' उसने आग्रह किया था कि 'यह सूचना उसके पिताको तुरंत पहुँचा दी जाय।"

गिरिजाशंकरके दुर्घटनाग्रस्त और फिर उनकी मृत्यु हो जानेकी सूचना उनके भाईको, जो पूर्व-बंगालमें राजकीय सेवाके सम्बन्धमें दूरस्थ एक ग्रामीण स्थानमें थे, नहीं मिली थी। उन्होंने अपने पिताको पत्र लिखा कि "मैंने गिरिजाशंकरकी मृत-पत्नीको स्वप्नमें देखा। वह आनन्दमें मग्न थी। उसकी वेष-भूषा नवविवाहिता महिलाकी-सी थी। लाल किनारीकी साड़ी पहने थी। माँगमें सिन्दूर, हाथमें शंखकी तथा धातुकी चूड़ियाँ थीं। वह हँसती जाती थी, पर बोलती नहीं थी।' फिर कहने लगी 'तुम देखते नहीं, मैंने दूसरी बार विवाह कराया है। जबसे मैं तुम्हारे भाईको छोड़कर यहाँ आयी थी तो विधवाकी भाँति अकेले दिन काटना बड़ा कष्टदायक था। इससे भी अधिक दुःख इस बातका था कि तुम्हारा भाई उचित पथपर नहीं चल रहा था। अब वह मेरे पास आ गया है।' उसने अपने पितासे इस विलक्षण स्वप्नका तात्पर्य पूछा था।"

महात्मा शिशिरकुमार घोषके भ्राता श्रीमोतीलाल गिरिजाशंकरकी अकाल मृत्युपर शोक-संवेदना प्रकट करने जब उनके पूज्य पिताके पास गये तो उन्होंने अपने अनुमानके प्रतिकूल उनको स्थिरचित्त तथा शान्त पाया, जिसका कारण उपर्युक्त घटनाएँ तथा एक दिव्य महात्माका दर्शन था, जिससे इनके मनपर गहरा प्रभाव पड़ा था। ये सभी बातें उन्होंने स्वयं मोतीबाबूको बतायी थीं। आर्यपत्नीका प्रेम धन्य है। एक फारसी कविकी उक्ति है—

'हम चो हिंदू जन कसे दर आशकी मरदाना नेस्त।
सोखतन बर शमय मुर्दा कारे हर परवाना नेस्त॥'
'हिंदू स्त्री-जैसा प्रेम करनेमें कोई शूरवीर नहीं।
बुझे हुए दीपकपर जल मरना साधारण पतङ्गका काम नहीं॥'

कामके पत्र

(१)

प्रकृतिकी लीलाके द्रष्टा बनिये

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि आत्मा—पुरुष सुख-दुःख, जन्म-मरणादि द्वन्द्वोंसे रहित नित्य शुद्ध-बुद्ध है। परंतु 'प्रकृतिस्थ' होनेके कारण प्रकृतिमें होनेवाले परिवर्तन और विकार पुरुषमें दिखायी देते हैं और वह भी ऐसा ही अनुभव करके सुख-दुःख भोगता तथा जन्म-मरण एवं अच्छी-बुरी योनियोंके चक्रमें पड़ा रहता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥
(गीता १३। २१)

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही उसके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेमें कारण है।'

प्रकृतिकी चञ्चलतामयी लीलामें जब पुरुष स्वयं जाकर मिल जाता है, तभी यह सब होता है। इससे छूटनेका उपाय है—वह 'स्व-स्थ' (आत्मस्थ) होकर प्रकृतिकी लीलाका द्रष्टा बन जाय और प्रकृतिके समस्त कार्योंको दृश्य बनाकर देखने लगे। जहाँ कर्त्ता-भोक्ता न रहकर द्रष्टा बना कि चटुला प्रकृति-नटीका ताण्डव नृत्य अपने-आप बंद हो जायगा। द्रष्टाके आसनपर विराजमान आत्मस्थ अप्रक्षुब्ध भावसे देखनेवाले पुरुषके सामने प्रकृति दृश्य बनकर लीला नहीं कर सकती। उसकी लीला बंद हो जाती है। फिर प्रकृतिके द्वन्द्वोंका द्रष्टा पुरुषपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह प्रकृतिके गुणोंसे अतीत होकर समताका अनुभव करता है। उसीके लिये कहा है—

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥
(गीता १४। २३—२५)

''तटस्थ उदासीन द्रष्टाकी भाँति स्थित वह पुरुष प्रकृतिके गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता। गुण ही गुणोंमें वर्त रहे हैं—यों समझता हुआ वह परमात्मामें एक रूपसे स्थित रहता है, उस स्थितिसे कभी चलायमान नहीं होता। वह स्व-स्थ (स्व—आत्मामें स्थित) दुःख-सुखको, मिट्टी-पत्थर स्वर्णको, प्रिय-अप्रियको और अपनी निन्दास्तुतिको समान समझनेवाला धीर पुरुष मान-अपमान, मित्र-शत्रुको समभावसे देखता है। ऐसा समस्त आरम्भोंका त्यागी—किसी भी आरम्भमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष 'गुणातीत' कहलाता है।''

तदनन्तर जब प्रकृतिकी लीलाका 'दृश्य' नहीं रहता, तब वह द्रष्टा भी नहीं रहता। वह नित्य अपने सच्चिदानन्द स्वरूपमें स्थित रहता है। यही जीवन्मुक्तावस्था है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

भूलके लिये पश्चात्ताप तथा पुनः भूल न करनेकी प्रतिज्ञासे भूल मिटती है

प्रिय भाई ! सप्रेम हरिस्मरण। मनुष्यके जीवनमें दुर्बलताके क्षण आते ही हैं, काम-क्रोध-लोभादिके आवेशमें, कुसङ्गके कारण अथवा पूर्वके बुरे संस्कारोंके उदय हो जानेसे उससे भूल हो जाती है, आचरणमें दोष आ जाता है। पर साधक पुरुष तुरंत सावधान हो जाता है; वह अपनेको उस पतनके प्रवाहमें बहा नहीं देता। भगवत्कृपाका सहारा लेकर तुरंत उछलकर बाहर निकल आता है। यही विषयी और साधकका पार्थक्य है। इसके लिये दृढ़ निश्चय, अनिवार्य मनोबल, सत्सङ्ग और भगवत्कृपाके आश्रयकी आवश्यकता है।

वास्तविक साधकको अपनी भूलपर—अपने पतनपर पश्चात्ताप होगा ही। वह पुनः वैसी भूल न करनेके लिये भगवान्से सहायता चाहेगा और अपने मनोबलको और भी मजबूत बनावेगा। कभी भी अपनी भूलको वह न सहन करेगा, न असावधान और लापरवाह रहेगा। साधकका यही स्वरूप है। वह अपनी भूलपर लज्जित होता—रोता है और भविष्यमें वैसी भूल न करनेकी प्रतिज्ञा करता है।

जो लोग भूल-दोषको सह लेते हैं, उसके लिये पश्चात्ताप नहीं करते; वरं असावधान रहते हैं, उनमें दोष तथा पतनके कारण बढ़ते रहते हैं और साथ ही भूल या पतनके प्रसङ्ग भी। ऐसा मनुष्य सत्सङ्ग प्राप्त होनेपर सुधर सकता है।

जो मनुष्य पतनको उत्थान मानता है, भूल करके उसका अभिमान करता है, पाप करके अपनेको बुद्धिमान् तथा गौरवान्वित मानता है, उसके सुधारकी आशा बहुत ही

कम है। जान-बूझकर पापको पुण्य मानकर उसे आश्रय देना एक बड़ा पाप है। इससे नये-नये पापोंका उदय होता है।

तुमसे भूल हुई, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भूल प्रायः सभीसे होती है। पर भगवान्‌की तुमपर बड़ी कृपा है, जो तुम्हें वह अपनी भूल—बड़े अपराधके रूपमें दिखायी देती है, तुम उसके लिये पछता रहे हो और भविष्यमें भूल न हो, इसके लिये भगवान्‌से करुण प्रार्थना कर रहे हो। तुम्हारे इस आचरणसे भगवान्‌की कृपा तुम्हें बल देगी और तुम भविष्यमें भूलों-अपराधोंसे बच सकोगे,—ऐसी आशा है। भगवत्कृपाके बलपर मनमें यह दृढ़ निश्चय करो कि अबसे आगे कभी ऐसी भूल मुझसे नहीं होगी—नहीं होगी। शेष भगवत्कृपा।

(३)

दो प्रश्नोंका उत्तर

प्रिय महोदय! आपका कृपापत्र मिला। आपके दोनों प्रश्नोंके उत्तर निम्नलिखित हैं—

(क)

(१) मनुष्य-जीवन जीव दिया ही जाता है—जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त होकर परमात्माकी प्राप्ति, स्व-स्वरूपमें स्थिति, मोक्ष, भगवत्साक्षात्कार या भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये। नाम कुछ भी हो' बात एक ही है—इस माया-प्रपञ्चसे छूटकर भगवान्‌में स्थित हो जाना।

जिस समय अधिक मनुष्य इस लक्ष्यपर चलनेवाले होते हैं, उसका नाम है—'सत्ययुग' और जब विरले ही लोग इस लक्ष्यपर चलते हैं, शेष सब कामोपभोगपरायण होकर अनवरत सांसारिक भोगोंके अर्जन तथा भोगके प्रयासमें लगे रहते हैं, उस समयका नाम है—'कलियुग।

यही सत्ययुग और कलियुगका भेद है। इस कलियुगमें भी जो मानव जीवनके लक्ष्यपर सुदृढ़ रहकर उसीकी ओर बढ़ते रहते हैं, वे कलियुगमें सत्ययुगी हैं। ऐसे सत्ययुगी मनुष्योंका ही सङ्ग करना और इन्हींके उपदेश तथा आचरणके अनुसार जीवन बनाना चाहिये। इससे वास्तविक विवेक होगा; विवेकसे वैराग्य; वैराग्यसे शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान–यह षट्सम्पत्ति प्राप्त होगी। यह अनिवार्य है। षट्सम्पत्ति प्राप्त न हुई तो मानना चाहिये कि वैराग्य हुआ ही नहीं और वैराग्यका उदयन हुआ तो विवेक आया ही नहीं। षट्सम्पत्ति आते ही मोक्षकी इच्छा जाग उठती है, तब एकमात्र मोक्षके लिये ही साधन होता है और उसका फल तो स्व-स्वरूपमें स्थिति, ब्रह्म या परमात्माकी प्राप्ति है ही।

(ख)

हमारी इस पृथ्वीकी मानव-जाति अध्यात्मवादके अभाव, ईश्वरकी अमान्यता, कर्मफलमें अविश्वास, सीमित स्वार्थ, विपरीतदर्शिनी तामसी बुद्धि, भय, संदेह, मिथ्या अभिमान और विशुद्ध भौतिकता या भोगवाद, अनात्मवादी भौतिक आसुरी विज्ञान आदिके वशमें होनेके कारण परमात्मा, आत्मा, आत्मसाक्षात्कार ही जीवनका लक्ष्य, कर्मफल-भोगकी अनिवार्यता, सर्वभूतहित, सर्वत्र सुखशान्तिके प्रसार, सबके आतङ्करहित निर्भीक जीवन और सबकी सेवा करके सबका हित करनेकी भावनाको भूलकर धराके बड़े-बड़े राष्ट्र दूसरोंके आक्रमणसे अपनी सुरक्षा अथवा दूसरोंपर आक्रमण करके उनपर विजय प्राप्त करने तथा उनका सर्वस्व अपहरण करनेके लिये दिन-रात संदेह, भय-त्रास, काम-क्रोध-लोभ तथा अभिमान-मद-दर्पसे भरे अपनी बुद्धि, विद्या, शक्ति, विशाल अर्थराशि, समय, विज्ञान—सबके द्वारा घोर राक्षसी विनाशके आयोजनमें लगे हैं। नीचे दिये हुए आँकड़ोंसे इसका अनुमान हो सकेगा। पिछले दिनों 'मुंबईसमाचार'में छपा था—

'दुनियामें ७५ करोड़के लगभग फौजी राइफलें और पिस्तौलें फैली हुई हैं। प्रत्येक जवान मजबूत मानवके पीछे एक समझनी चाहिये। इसके अतिरिक्त गोलियों तथा दूसरे विस्फोटक पदार्थोंका हजारों अरब जितने 'राउन्ड' करोड़ोंकी संख्यामें मशीनगन, मोर्टार, टैंक नष्ट करनेवाले शस्त्र, तोप आदि, लाखके लगभग युद्ध-विमान और हजारोंकी संख्यामें फौजी जलयानोंमें काममें आनेवाले शस्त्र संगृहीत हैं। दुनियाके देशोंमें चार महान् शक्तियाँ (उत्तरोत्तर बढ़ती हुई) शस्त्र-सज्जाकी माँगको पूरा करनेका काम कर रही हैं। अमेरिकाने १९४५ के बाद ३६००० करोड़ (रुपये) के मूल्यके शस्त्रोंका व्यापार किया है। ब्रिटेन और फ्रांसने अनुक्रमसे रु० ४५०० करोड़ और २७०७ करोड़के शस्त्र बेचे हैं और रूसमें रु० ६२०० करोड़का इन शस्त्रोंका व्यापार हुआ है। दूसरे विश्वयुद्धमें सेनाका जितना संख्याबल था, वर्तमानमें उससे दूना हो गया है।×××''

सम्मेलनों और वक्तव्योंमें विश्वशान्ति, विश्वप्रेमकी बातें कही जाती हैं और आचरणमें प्रत्यक्ष उसका विरोधी कार्य किया जा रहा है। इस अवस्थामें, जबतक लोगोंका

हृदय-परिवर्तन न हो, जबतक 'स्व'की सीमाका विस्तार न हो, जबतक वास्तवमें सर्वहितमें अपना हित न समझा जाय, तबतक यह तामसप्रवाह रुकनेवाला नहीं है। इसीमें हित दिखायी देता है—यही कर्तव्य प्रतीत होता है। तमसाच्छन्न आसुरी बुद्धिका स्वभाव ही ऐसा है। इसका अवश्यम्भावी फल है—अधःपतन। भगवान् गीतामें कहते हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥
(१८। ३२)

और

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥
(१४। १८)

'तमोगुणसे आवृत बुद्धि अधर्मको धर्म मानती है और सभी बातोंमें विपरीत ही निश्चय करती है। हे अर्जुन! वह तामसी बुद्धि है।'

और 'इस जघन्यगुणवृत्तिमें स्थित तामस लोग नीची गतिको प्राप्त होते हैं। शेष भगवत्कृपा।

(४)

अपने कर्तव्यका पालन कीजिये

प्रिय बहिन! सस्नेह हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने अपने पिताके व्यवहार-बर्तावके सम्बन्धमें तथा मातासे भी प्यार न मिलनेकी बात लिखी, सो वस्तुतः बड़े दुःखकी बात है। इससे आपके मनमें घोर संताप होना स्वाभाविक ही है। पिता-माताको अपनी संतानके साथ ऐसा बर्ताव नहीं करना चाहिये। पर आप अपने कर्तव्य-पालनमें लगी हैं, यह बड़े संतोषका विषय है। जन्मसे लेकर अबतक—कभी-न-कभी चाहे बहुत लड़कपनमें ही माता-पिताने आपके पालन-पोषण तथा पढ़ाने-लिखानेमें कुछ तो समय—मन लगाया ही होगा। आप उनके दोषोंको न देखकर उनके उन छोटे-मोटे उपकारोंको स्मरण कीजिये और भगवान्से प्रार्थना कीजिये कि लोक-परलोकमें उनको सुबुद्धि दें और उनके अपराधोंको क्षमा करें।

मेरी समझसे विवाह करा लेना परम आवश्यक है। वह धर्म तो है ही—उससे जीवनमें एक संयमका अवसर मिलता है। अर्थकी कमीसे विवाह होनेमें कठिनता अवश्य है, पर पता लगानेपर ऐसे मध्यम स्थितिके कमाने-खानेवाले पुरुष मिल सकते हैं, जो अर्थ न चाहकर सद्गुणवती गृहिणी चाहते हों। आपके विवाहमें अड़चन न आती हो, आपका पहले विवाह हो जानेपर छोटी बहिनोंके विवाहमें बाधा आती हो तो पहले उनका विवाह किया जा सकता है। घरकी परिस्थितिके अनुसार नौकरी करना आवश्यक हो तो आपद्धर्म मानकर नौकरी करनी चाहिये, पर वह ऐसी न हो, जिसमें नैतिक पतनकी सम्भावना हो।

दो बातोंको भूल जाना और दोको याद रखना चाहिये। 'अपने द्वारा किसीका किया हुआ उपकार भूल जाय, दूसरेके द्वारा की हुई अपनी हानिको भूल जाय।' 'अपने द्वारा किसीको कभी हानि पहुँचायी गयी हो' उसे याद रक्खे, दूसरेके द्वारा कभी अपनी भलाई हुई हो, उसे याद रक्खे।' शेष भगवत्कृपा।

(५)

कमजोरियाँ और बुराइयाँ दूर हो सकती हैं

प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपको अपनी कमजोरियाँ और बुराइयाँ दीखती हैं—यह आपका सद्गुण है। कमजोरियाँ और बुराइयाँ आत्माके धर्म नहीं हैं; ये आगन्तुक दोष हैं और भगवत्कृपाका आश्रय लेकर इन्हें दूर करनेका दृढ़ निश्चयके साथ प्रयास किया जाय तो ये अवश्य ही दूर हो सकती हैं। आप इसके लिये प्रयास कीजिये। यहाँके 'साधक-संघ'की नियमावली आपको भेजी जा रही है, उसके अनुसार नियमोंका पालन करना आरम्भ कर दीजिये तथा प्रतिदिन देखते रहिये—दोषोंमें कमी और सद्गुणोंमें वृद्धि हो रही है या नहीं। यहाँ रिपोर्ट भेजा कीजिये। निराश न होइये। भगवच्छरणागतिसे सारे पाप-ताप दूर हो जाते हैं।

लड़कीकी मृत्युके सम्बन्धमें आपने लिखा, सो आपको सेवा न करनेका पश्चात्ताप है, यह तो बहुत ठीक है। सेवा करनी ही चाहिये। पर आप उसकी मृत्युको बचा नहीं सकते थे। अतएव उसके लिये शोक-विषाद छोड़कर भविष्यके लिये सावधानीके साथ कर्तव्य-पालनका निश्चय कीजिये।

'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम।'

शेष भगवत्कृपा।

(६)

प्रिय बहिन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके मानसिक संतापके लिये मेरे मनमें सहानुभूति है, पर इस संतापका नाश भगवत्कृपाका अवलम्बन लेकर उसके बलसे आप ही कर सकेंगी। लंबे पत्रका संक्षेपमें उत्तर नीचे लिखा जाता है—

(१) क्रोध अवश्य ही बहुत बुरी चीज है। मनकी प्रतिकूलतामें इसका उदय होता है और जहाँ प्रतिकूलता सहनेको मनुष्य अत्यन्त विवश हो जाता है, वहाँ वह और

भी ज्यादा आता है। प्रत्येक प्रतिकूलताको भगवान्‌का मङ्गल-विधान मानकर संतोष करनेका अभ्यास कीजिये। क्रोध आनेपर चुप रहिये या एक सौ आठ बार भगवान्‌का नाम लेनेका नियम ले लीजिये। भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये। क्रोधका वेग कम हो जायगा।

(२) भगवान्‌को मन-ही-मन सद्गुरु मान लीजिये और मन-ही-मन उनको प्रणामकर तथा उनसे पूछकर काम किया कीजिये।

(३) विवाह हो जाय तो बहुत अच्छा है। हो सके तो आप—

हे गौरि शंकरार्धाङ्गि यथा त्वं शंकरप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम्॥

—इस मन्त्रकी एक मालाका जाप रोज कीजिये और पार्वती मातासे प्रार्थना करते रहिये कि वे आपके लिये सुयोग्य वर शीघ्र प्रदान करें।

(४) आत्महत्याकी बात कभी मनमें भी मत लाइये। यह महापाप है। आत्महत्यामें आत्मा यानी आपकी मृत्यु नहीं होती, इस शरीरसे सम्बन्ध छूटता है। पर आत्महत्या-जनित पाप आपके साथ जाता है और उसका बहुत ही बुरा, अत्यन्त कष्टदायक फल आपको बाध्य होकर भोगना पड़ता है। अतएव आत्महत्याका कभी विचार भी मत कीजिये।

(५) आपके जानेसे किसीको सुख-दुःख नहीं होगा। सुख-दुःख तो अनुकूलता-प्रतिकूलताकी अनुभूतिमें होता है।

(६) आप श्रीमद्भागवत, पुरुषोत्तमसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम, नारायणकवच आदिका पाठ रोज करती हैं तथा 'कृपं यद्गोपतरुभावः'—गीताके मन्त्रकी एक माला तथा 'श्रीकृष्णः शरणं मम' की पाँच मालाका जप करती हैं, सो बहुत अच्छी बात है। अवश्य करती रहिये। यह व्यर्थ नहीं जा रहे हैं। इनका फल हो रहा है, जो अभी आपको दीखता नहीं। विश्वास, श्रद्धा तथा प्रेमके साथ करेंगी तो फल बहुत उच्चस्तरका तथा शीघ्र होगा।

(७) अपनेको भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य शरण करके उन्हींको एकमात्र अपना आश्रय मानिये। उनकी कृपासे सारे विघ्नोंका नाश, समस्त कल्याणकी प्राप्ति अपने आप हो जायगी। आप निराश न होकर भगवत्कृपापर विश्वास करके भगवान्‌के शरण हो जाइये। शेषभगवत्कृपा।

(७)

प्रेम तथा नम्रतासे फिर समझाइये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला। आप ईश्वर-विश्वासी, सात्त्विक संतोषी तथा संकोची वृत्तिके पुरुष हैं, सो ये तो आपके गुण हैं। आपने अपने धनसे मकान बनवाया था और उसमें बड़े भाई एवं उनके परिवारको कुछ समयके लिये रक्खा था, पर वे अब जा नहीं रहे हैं। कहनेपर भी ध्यान नहीं देते। यह वास्तवमें उनकी ज्यादती है। उन्हें नम्रतासे तथा प्रेमसे फिर समझाइये। आपसे न समझें तो पास-पड़ोसके भले आदमियोंसे कहलवाइये। नितान्त असम्भव होनेपर, मनमें राग-द्वेष न रखते हुए कानूनी सलाह लेकर तदनुसार उचित कार्यवाही भी की जा सकती है। सुन्दरकाण्ड, हनुमानचालीसाका पाठ करते हैं सो करते रहिये। 'ॐ गं गणपतये नमः' इस मन्त्रकी पाँच मालाका जप इसी उद्देश्यसे करना शुरू कर दीजिये। भगवत्कृपाका भरोसा कीजिये। उनकी कृपासे सब कुछ सहज सम्भव है। शेष भगवत्कृपा।

(८)

पत्नीका परित्याग उचित नहीं है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि अपने एक सहकर्मीकी राक्षसी वृत्तिपर क्षोभ होना तो स्वाभाविक ही था, परंतु दैवी-शक्तिकी प्रेरणासे आपने डूबकर आत्महत्या नहीं की और पापका प्रायश्चित्त आत्महत्या नहीं, पापका परिष्कार और पुनः न होने देनेका निश्चय ही है—यह बुद्धि आपको आ गयी, सो बहुत अच्छा हुआ। वास्तवमें ऐसी ही बात है।

संत नवयुवकको पत्नीका परित्याग न करके यथा-साध्य प्रेम-स्नेहके सद्व्यवहारसे उसे सुधारना है। निराश न होकर भगवत्कृपाके आश्रयसे सत्प्रयास जारी रखना है। भगवान्‌से विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना है।

पत्नी-परित्याग वास्तवमें पाप ही है। यथासाध्य इससे बचना चाहिये। भरण-पोषण तो सबका भगवान् ही करते हैं, परंतु भगवान्‌की दी हुई जिम्मेवारीको निबाहना हमारा कर्तव्य है।

भगवत्प्रार्थना, सद्व्यवहार तथा सौम्य वचनोंसे बहुत कुछ सुधार हो सकता है। एकान्तवास साधनके लिये बीच-बीचमें किया जाय तो अच्छा है, परंतु ऊबकर या खीझकर नहीं।

मनुष्य अपनेमें कितने ही दोष होनेपर कभी अपनेसे घृणा नहीं करता, कभी अपना त्याग नहीं करता तथा कभी अपना अहित नहीं चाहता—करता। यही भाव ठीक दूसरेंके प्रति हमारा होना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य । तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥
नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः । पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः ॥

'जिस प्रकार सूर्य भगवान् उदय होनेमात्रसे ही सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार श्रीहरिका नाम एक बार उच्चारणमात्रसे ही जीवमात्रके समस्त पापोंको नष्ट कर देता है, अतएव जगत्के मङ्गलप्रद श्रीहरिनामकी जय हो। नाम और नामीमें भेद न होनेके कारण—चैतन्यरसविग्रह, पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त श्रीकृष्णचन्द्र ही नामके रूपसे अवतीर्ण हैं। अर्थात् जिस प्रकार श्रीकृष्ण अवतार लेकर भक्तोंके अभीष्टोंको पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार चिन्तामणिके सदृश उनका नाम भी समस्त अभीष्टोंको पूर्ण कर सकता है।'

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, कलह-क्लेश, द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसा, अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, स्वेच्छाचार आदिसे पीड़ित तथा भगवद्विमुखतारूप दुर्भाग्यसे युक्त मानवको इन सभीसे सहज मुक्त कर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मनुष्य-जीवनके लक्ष्य मोक्ष या भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही सरल साधन है। इस समय चारों ओर अशान्तिके बादल छाये हैं, युद्धकी भीषणता सिरपर सवार है। इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी भाँति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक स्वयं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करायें। यही परम हित है। गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रसे २० (बीस) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की जाती है। नियमादि इस प्रकार हैं—

१—यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके—सबके परम कल्याणकी भावनासे ही किया-कराया जाता है।

२—इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक शुक्ला १५ रविवार सं० २०२६ (२३ नवम्बर १९६९) से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ला १५ मंगलवार सं० २०२७ (२१ अप्रैल १९७०) तक रहेगा। जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ला १५ सं० २०२७ को समझनी चाहिये। पाँच महीनेका समय है। उसके आगे भी जप किया जाय, तब तो बहुत ही उत्तम है, करना चाहिये ही। यह 'कल्याण' देरसे मिले तो जब मिले, तभीसे जप शुरू कर देना चाहिये।

३—सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस-मन्त्रका जप कर सकते हैं।

४—एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'—इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य करना चाहिये। अधिक कितना भी किया जा सकता है।

५-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अँगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे रक्खी जा सकती है।

६-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए—सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

७-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिपर प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

८-घरमें सौरी-सूतकके समय भी जप किया जा सकता है।

९-स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं, किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माला हाथमें लेकर जप नहीं करना चाहिये। संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारसे रख लेनी चाहिये।

१०-इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-बहिन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपने किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं। पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें।

११-सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

१२-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ (१०८) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिनसे जो बहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

१३-सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करनेका संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो।

१४-जप करनेवाले सज्जनोंको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा। स्मरण रहे—ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साह-वृद्धिमें सहायक बनते हैं।

१५-सूचना संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकती है।

१६-सूचना भेजनेका पता—'नाम-जप-विभाग,' 'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीतावाटिका (गोरखपुर)

प्रार्थी—चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक-'कल्याण', गोरखपुर

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पचीस वर्ष बाद बिना माँगे ही रुपये लौटानेकी आदर्श क्रिया

उस दिन तीन स्थानीय मेरे सुपरिचित सज्जन एक प्रौढ़ पुरुषके साथ मेरे पास आये और कुशल-प्रश्नके पश्चात् बोले —'ये पैंतालीस हजार हम वापस करना चाहते हैं, कृपया जिन-जिनके हों, उन्हें दिलाकर हमें ऋणमुक्त कराइये।' मुझे कुछ भी याद नहीं था। पूछनेपर उन लोगोंने बताया तब मुझे सब याद आयी। बात यह थी—लगभग २०-२५ वर्ष पूर्व इन तीनों भाइयोंके फार्मकी आर्थिक स्थिति कुछ विशेष खराब हो गयी थी। तब इन्हींके परिवारके एक अन्य सज्जनके साथ, जिनका कई वर्ष हुए देहावसान हो गया है, परामर्श करके इन्हींके निकट-दूरके परिवारोंके नौ फार्मोंसे इन्हें पैंतालीस हजार रुपये इस शर्तपर दिलवाये गये थे 'कि देनेवाले तो देकर भूल जायँ, हमारा ऋण इनपर है, ऐसी भावना भी न रक्खें और कभी रुपयोंकी माँग करें ही नहीं और इनके पास यदि कभी रुपये हों तो ये बिना ही माँगे सब चुका दें; व्याज न दें और उस स्थितिमें देनेवाले अपने रुपये वापस ले लें।''

वर्षों बीत गये, इनकी स्थितिमें कोई खास सुधार नहीं हुआ। तीनों भाई साधारण कमाई करके अपनी गृहस्थीका खर्च चलाते रहे। देनेवालोंमें दो-तीन सज्जनोंका देहावसान हो गया। उनके लड़के हैं। देनेवालोंने कभी रुपयोंकी याद ही नहीं की, तकाजा करना तो दूर रहा। इनकी रुपये वापस लौटाने लायक स्थिति नहीं हुई। अब भी इन्होंने बहुत रुपये पैदा किये हों, सो बात नहीं है। इनमेंसे एक भाईके पास यह पुराना ऋण चुकाने-जितने रुपये इकट्ठे हो गये और तीनों भाइयोंने विचार करके रुपये लौटानेका निश्चय किया और इसी कामके लिये मेरे पास आये। मुझे इनकी ऐसी शुद्ध तथा ईमानदारी-भरी नीयत देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने रुपये देनेवाले सज्जनोंसे बातचीत की। कुछको तो स्मरण ही नहीं था, कुछने वापस लेनेमें जरा आनाकानी की; पर मेरे कहनेपर सबने स्वीकार कर लिया और अपने-अपने मूल रुपये वापस ले लिये। इनमें कुछको इस समय विशेष आवश्यकता थी, उनको रुपये मिलनेसे बड़ी सुविधा हुई। कुछने रुपये लेकर उनमेंसे कुछ हिस्सा दान-धर्ममें लगा दिया। पर ये ऋण-मुक्त हो गये।

वास्तवमें अपना ऋण चुकानेमें कोई बड़ाईकी बात नहीं है, वरं सौभाग्य है। पर आजके इस युगमें जहाँ पैसेके लिये मनुष्य किसी पापको पाप नहीं समझता, कानूनसे न देनेसे काम चलता हो तो प्रायः देनेकी इच्छा ही नहीं करता; वहाँ २०-२५ वर्ष पहलेके रुपये, जिनकी देनेवालोंको भी याद नहीं है, अपनी थोड़ी-सी कमाईसे संग्रह करके, अपने आपको साधारण स्थितिमें रखते हुए ही, बिना माँगे लौटा देना—सर्वथा प्रशंसनीय और आदर्श कार्य है। इनकी इस बातको जो कोई भी सुनता है, प्रशंसा करता है और उसपर इनकी ईमानदारीकी गहरी छाप पड़ती है। भारतीयोंकी यह सहज वृत्ति थी, दूसरेकी चीज अपने पास न रहे। इस वृत्तिको इनके इस कार्यसे बड़ा पोषण मिला है। भगवान् सभीको ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें।

—एक जानकार

(२)

किस जन्मके पुण्यसे ?

कुछ वर्षों पूर्व मथुरामें होम्स साहेब कलक्टर थे। उनकी पत्नीका देहावसान हो गया था। उनके एक पाँच वर्षका जेम्स नामक पुत्र था। होम्स साहेबके भी जब स्वर्गवासी होनेका समय आया, तब उन्होंने अपने मित्र श्रीकमलकिशोर शास्त्रीको बुलाकर पुत्रको उन्हें सौंपते हुए कहा—'मैं तो चला। मेरे पास ये साढ़े तीन लाख रुपये हैं, इन्हें आप रखिये। इनमेंसे जेम्सको पढ़ाकर आई० सी० एस्० बनाइयेगा।'

शास्त्रीजी सुखी थे। हर साल तीस हजारकी जमींदारीकी आमदनी थी। बड़ा मकान भी था। शास्त्रीजीने जेम्सको अपने यहाँ रक्खा। उसका नाम रक्खा गया—ललितकिशोर। संस्कृत, हिंदी, अंगरेजी पढ़ानेके लिये तीनों भाषाओंके शिक्षक रक्खे गये। जेम्स बहुत बार भारतीय पोशाक पहने मित्रोंके साथ घूमता। शास्त्रीजीको पिताजी और उनकी पत्नीको माताजी कहता। यों करते-करते जब उसकी इन्ट्रेंसकी परीक्षा समीप आयी, तब शास्त्रीजी भी स्वधाम पधार गये। जाते-जाते उन्होंने जेम्सको पत्नीके

हाथों सौंपते हुए कहा—'यह अपना ही पुत्र है, यों समझकर इसे अच्छी तरह पढ़ाना और विलायत भेजना।'

जेम्स पाँच वर्षतक विलायत रहा। वहाँ जरूरत होती, तब रुपयोंके लिये माको लिखता और मा जेम्स पाँच सौ माँगता तो सात सौ भेजती। उसने जेम्सकी अच्छी तरह देख-रेख की। परंतु उच्च घरानेकी विधवा स्त्रियाँ अपनी सम्पत्तिको नहीं सँभाल सकतीं। गुमाश्तों तथा कार्यकर्त्ताओंने सब लूट लिया। कर्ज हो गया। पावनेदारोंने उनको हैरान करना शुरू किया। इतनेपर भी माने इतनी सँभाल रक्खी कि जेम्सको इसका जरा भी पता न लगा।

एक दिन एक युवक इनसे मिलने आया। उसने धोती-कमीज पहन रक्खी थी। माताजी कहकर नमस्कार किया, चरण-धूलि ली। पता लगा कि यह उनका लाड़ला ललित था। कलक्टर होकर आया था। आज पहलेकी तरह इसने माके हाथका कढ़ी-भात खानेकी इच्छा प्रकट की, अतः मा पड़ोससे छाछ लाने गयीं और इधर जेम्स पुराने मकानकी स्मृतियाँ ताजी करनेको निकला। उसको चारों ओर फैली दरिद्रताको देखकर बड़ा ही दुःख हुआ। भोजन करते-करते कर्जकी बात निकली, तब हाथका कौर जेम्सके हाथमें ही रह गया—'मेरे ही लिये तो मा भिखारिन बनी है।'

जाते समय जेम्सने कहा—'मा, तू मेरे साथ रह। मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगा। मिल्कियतकी व्यवस्था मैं अब जरूर करूँगा, पर कानून ऐसे हैं कि उसमें बड़ी देर लगेगी।' तब माने कहा—'बेटा! अब माया नहीं बढ़ानी है। तुम्हारे पिता साढ़े तीन लाख रुपये रख गये हैं, वे तुम ले जाओ, मैंने उनको अच्छी तरह सँभाल कर रक्खा है।' माने पेटी दिखायी। गद्‌गद हुआ जेम्स तो देखता ही रह गया। सोचने लगा—'किस जन्मके पुण्यसे मुझे ऐसी माता मिली!'

आग्रह करके जेम्स माताजीको मथुरा ले गया। उनके रहनेके लिये अलग व्यवस्था कर दी। सेवाके लिये दासी रक्खी गयी, परंतु कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़कर जेम्स और उसकी मेमसाहिबा माकी सेवामें हाजिर रहते। लुटी-चुरायी मिल्कियत भी जेम्सने वापस दिलवा दी और मा उसमेंसे दान-पुण्य करती रहीं। (अखण्ड आनन्द)

(३)

मित्रका धर्म

लगभग बीस वर्ष पहलेकी बात है। कलकत्तेमें दो सज्जन प्रातःकाल चार बजेके लगभग गङ्गास्नानको जा रहे थे। आपसमें बहुत प्रेम था। पर दोनोंके आचरणमें कुछ भेद था। उनके आगे-आगे एक वाराङ्गना युवती जा रही थी। उसे देखकर इनमेंसे एक भाईने कुछ अनुचित विनोद-सा करते हुए उसके रूप-सौन्दर्यका बखान किया और अपने साथी मित्रसे कुछ कहा। उसे सुनकर वह बोला—'भाई! यह चाहे कोई हो, हमारे लिये तो मा है। माके प्रति जरा भी दुर्भाव करना बड़ा पाप है। फिर, इस समय तो हम पवित्र गङ्गाजीमें स्नान करनेको जा रहे हैं, जीवनमें जिस पापकी बात कभी मनमें नहीं उठनी चाहिये, गङ्गास्नानको जाते मनमें वैसी बुरी स्फुरणाका होना तो महापाप है। मैं दुर्गाजीका पाठ किया करता हूँ, उसमें आया है, जगत्‌में जितनी स्त्रियाँ हैं, सभी मा जगदम्बाके रूप हैं। अतः भाई! अबसे ऐसी बात कभी मनमें भी मत लाना। मैं तुम्हारा तिरस्कार नहीं कर रहा, न अपनी बड़ाई कर रहा हूँ; हम दोनों तो अभिन्न मित्र हैं। हमारे मनमें भी कभी बुरा संकल्प न उठे। परस्त्री तथा पराये धनपर कभी किसी भी हेतुसे हमारी नीयत न बिगड़े। भगवान्‌से हमें यही प्रार्थना करनी चाहिये।'

मित्रकी यह बात सुनकर वह कुछ लज्जित-सा हो गया, पर उसने बड़े कृतज्ञ हृदयसे मित्रका उपकार माना और उसकी सत्-सम्मतिके अनुसार भविष्यमें कभी ऐसा न करनेकी प्रतिज्ञा की। मित्रका यही धर्म है—

'कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।'

—बजरंगलाल शर्मा

(४)

सहृदया फलवाली

लक्ष्मी सादी और सत्यप्रिय स्त्री है। दुपहरके समय मौसमके फलोंकी फेरी करके कुटुम्बकी आमदनीको बढ़ाना उसका पूरक व्यवसाय है। उसके बर्तावकी मधुरताके कारण मुहल्लेके कुटुम्बोंके साथ उसका अत्यन्त ममताभरा सम्बन्ध हो गया था।

मुहल्लेमें बाहरसे एक नया कुटुम्ब आकर बसा था।

इस आगन्तुक कुटुम्बके साथ भी फलवालीका परिचय हो गया। बालकोंका उसके साथ स्नेह हो गया और अच्छे ताजे फल उस कुटुम्बके बालकोंके लिये लाना उसका कर्तव्य हो गया।

इस कुटुम्बकी स्वामिनी एक दिन शहरमें किसी विवाहके अवसरपर अपने दोनों बालकोंको साथ लेकर गयी। विवाहमें शामिल होकर शामको वापस आयी। कुछ चीजें बाजारसे लानी जरूरी थीं; अतएव जरूरी वस्तुओंकी सूची तथा पैसे देकर समीपकी ही एक जानी-पहचानी दूकानपर उन्हें चीजें खरीदकर लाने भेज दिया।

हमारे अपने हाथोंसे चीजें खरीदी गयीं, इसके उल्लासमें बच्चे धीरे-धीरे घरकी तरफ लौट रहे थे। इसी बीच दक्षाके गलेकी सोनेकी चेन कहीं गिर पड़ी। दक्षाको ध्यान ही नहीं रहा।

संयोगकी बात—फलवाली लक्ष्मी रात्रिको अपने घर लौट रही थी, उसे अपने पैरके पास चमकती हुई चेन दिखायी दी। उस समय कोई भी मनुष्य था नहीं, जिससे किसीकी चीज खो जाने बाबत पूछा जा सकता। थोड़ी देर दुविधामें रहकर अन्तमें लक्ष्मीने वह गहना उठा लिया। ईश्वर इसके असली मालिकको मिला दे तो उसे सौंप देनेके शुभ संकल्पसे उसने घर आकर चेनको सँभालकर रख दिया। 'लक्ष्मी देखकर मुनियोंका मन भी ललचा जाता है।'—इस सीधी-सादी लोकोक्तिको लक्ष्मी-बाई जानती थी। इसलिये किसीके सामने इस सम्बन्धकी कुछ भी चर्चा न कर उसने भगवान्‌के सामने हाथ जोड़कर उनसे सच्चा रास्ता बताने और इस जिम्मेवारीसे मुक्त करनेकी प्रार्थना की।

माका सौंपा हुआ काम झटपट कर डालनेके संतोष-के साथ दक्षा और मुकेश घर पहुँचे। दिनभरके मौज-मजे तथा परिश्रमके कारण वे सो गये। जीमे हुए थे, इससे उन्हें नींदमें देखकर माने कुछ पूछताछ नहीं किया और उन्हें आरामसे सोने दिया। परंतु दूसरे दिन सवेरे बच्चे नास्ता कर रहे थे, उस समय लड़कीके सूने गलेकी तरफ माका ध्यान गया और माने पूछा—'बेटा! क्या चेन उतारकर रख दी थी?' लड़कीने चौंककर गलेपर हाथ फिराया और फिर तो बिछौने वगैरह तथा सभी सम्भावित स्थानोंमें खोज शुरू हो गयी। शामको जिस दूकानपर बालक चीजें खरीदने गये थे, वहाँतकका रास्ता छान डाला, पर कहीं कुछ मिला नहीं।

लड़की 'दक्षा' नामके अनुसार ही सचमुच बड़ी चतुर थी। उसने माकी सान्त्वनाके लिये कहा—'मा! मुझे जो बरतनेके पैसे मिलते हैं, उनमेंसे अब मैं हर महीने दो रुपये बचाऊँगी, जिससे मुझे इस बातका ध्यान रहेगा।'

इस बीच फलवाली लक्ष्मी बीमार पड़ गयी, अतः उसके फल बेचनेके रोजके धंधेमें कुछ दिनोंका व्यवधान पड़ गया। इस समयमें उसके मनमें दो बातोंको लेकर बेचैनी रहती थी—बालकोंको उनके मनचाहे फल न पहुँचानेकी और अपने पास आयी हुई परायी गहनेकी धरोहर शीघ्र मालिक-के पास पहुँचानेकी। जब अच्छी हुई तब नियमित घूमने-फिरने तथा फेरी करके बालकोंको रिझाने लगी। इस नये कुटुम्बके आँगनमें आयी, पर बालकोंने फल नहीं लिये। बच्चोंके मनमें कुछ प्रतिकूलता हुई होगी—यह सोचकर लौट गयी। परंतु दूसरे दिन भी बालकोंने कुछ नहीं खरीदा और उनकी माताको उदासमुख बच्चोंकी तरफ दृष्टि डालते देखा, तब उसने कहा—'अभी पैसेका सुभीता न हो तो पीछे दे देना, आप तो मेरे जाने हुए हैं।'

''लड़कीकी माने कहा—लगभग पंद्रह दिन पहले बेबी-की सोनेकी चेन कहीं खो गयी थी। शामतक गलेमें थी। दोनों बच्चे कुछ चीजें खरीदने गये थे, वहीं खो गयी। ढूँढ़नेपर भी कहीं पता नहीं लगा। अपनी चीज सँभाल-कर रखनेका विशेष ध्यान रहे, इसलिये इसने अपने हाथ-खर्चमें कोर-कसर करनी शुरू की है।''

यह सुनते ही लक्ष्मीके मुखपर हर्षकी ज्योति छा गयी। उसने—ये बच्चे जिन फलोंको पसंद करते थे, वे फल उनको देते हुए कहा—'मेरे ग्राहक बालकोंमें ऐसे समझदार बालक हैं। इनके गुणपर रीझकर ये फल मैं अपनी तरफसे इन्हें दे रही हूँ।' यों कहकर लक्ष्मी चल दी।

लक्ष्मी रात्रिको अपने घरका काम निपटाकर भगवान्-का स्मरण करके सोनेकी चेन लेकर उस कुटुम्बके घर पहुँची। कोई भी विशेष बातचीत न करके गठरी खोलकर चेन निकालकर बोली—'लो बहिन! यही तुम्हारी चेन है न? देख लो।'

लड़की हर्षसे ताली बजाती हुई बोली—'अहा ! प्रभुने सचमुच वापस लौटा दी ।'

'यह वस्तु इन्हींकी है'—ऐसा विश्वास होनेपर लक्ष्मीके मुखपर भी पूर्ण संतोष छा गया और चेनका असली मालिक मिला देनेके लिये उसने प्रभुका उपकार माना । (अखण्ड आनन्द)

—सवाईलाल, ई. पंड्या ।

(५)

जगदम्बाकी विलक्षण कृपा

[सत्य घटना]

संवत् २०११ वि० की बात है । मेरे प्रथम पुत्र श्रीविद्यासागर मिश्रकी आयु उस समय लगभग चार वर्ष थी । भाद्रपदसे ही बीमार थे । शरीरकी आकृति डरावनी लगती थी । उसकी बीमारीसे मेरा हृदय व्यथित था । बड़ी चिन्ता थी । भविष्यमें क्या होनेवाला है ?

आश्विन कृष्ण ३० अमावस्या । अर्द्धरात्रिका समय । पत्नीका अचानक करुण रुदन सुनकर मैं घबराया और उदासमुख कमरेके अंदर गया ।

देखा रुग्ण पुत्रकी मुखाकृतिको । हृदय रो पड़ा । उसकी आँखें उलट गयी थीं । मुख खुल गया था । शरीरपर हाथ रक्खा तो एकदम ठंडा-शीतल । मुझे काठ-सा मार गया । मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया ।

अकस्मात् दाहिने गालपर मानो जोरोंका एक थप्पड़ लगा । पीछे घूमकर देखा, कोई नहीं । दरवाजेतक गया, किसीका पता नहीं । पुनः लौटकर पूर्ववत् खड़ा हो गया । सोचा, क्या करूँ? सहसा मुझे सुनायी दिया—'तुम मेरी पूजा, आराधना एवं पाठ करो । तुम्हारा कल्याण होगा ।' सुनते ही श्रवण तृप्त हो गये । वाणी मचल पड़ी । आँखें झरने लगीं !

मैंने कहा—'सान्त्वनाकी मूक अमृतवाणी मेरे कानोंमें उँड़ेलनेवाले आप कौन हैं ? क्या मैं आपको देख नहीं सकता ?'

'अभी नहीं । समयकी प्रतीक्षा करो । कहेपर गौर करो । तुम मुझे नहीं देखते, पर देवीकी आराधना करो । पाठ करो । बीज-मन्त्रका जप आरम्भ कर दो ।'

मुझे भ्रम-सा हुआ । क्या यह सत्य है ? तभी, मेरे पैर चलायमान हुए । गाँवकी देवीके स्थान (कालीस्थान) पर जाकर पैर रुक गये । शरीर दण्डकी तरह गिरकर माताको याद करने लगा । हृदय पुकार उठा—'त्राहि, मा जगदम्बे ! पाहि मां शरणागतम् ।'

प्रतिज्ञा की । 'मा ! तुम्हारा यह दास अधिक न सही, आश्विन एवं चैत्र शुक्ल नवरात्रमें तुम्हारी आराधना अवश्य करता रहेगा । मा ! कृपादृष्टिसे कभी वञ्चित न करना ।'

कुछ देर बाद उठा । माताके स्थानकी विभूति तथा आशीर्वाद लेकर लौटा । घर आया । रुग्ण पुत्रके खुले मुखमें विभूति दी । सिर, हाथ एवं कटिभागसे ऊपर विभूति लगा दी ।

जगदम्बाकी कृपा । रुग्ण बालककी चेतना लौट आयी । आँखें ठीक हो गयीं । मुख बंद हो गया । मेरे कान—'बाबूजी-बाबूजी'''शब्दसे तृप्त हो गये । बीज-मन्त्रका जप, जो अबतक अन्तःकरणमें हो रहा था, उसका शुभ परिणाम दर्पणकी भाँति साक्षात् सामने आ गया । मैं आनन्द-विभोर हो उठा । मेरा मन-मयूर नृत्य कर उठा ।

धन्य हो माता ! सबपर तुम्हारी कृपा बनी रहे । उस समयसे विजयादशमीतक जप किया । पाठकी विधिका मुझे पता नहीं था । उन दिनों पं० श्रीरामाधार त्रिपाठीजी श्रीद्रोणाचार्य संस्कृत पाठशाला, दोनमें अध्यापन-कार्य कर रहे थे । उनसे पाठ-विधिका साधारण ज्ञान प्राप्त किया । पाठक्रम माताकी कृपासे प्रतिज्ञानुसार यथाविधि चालू है ।

स्वप्नमें भविष्य-दर्शन एवं संकट-निवारणका सुगम उपाय बीज-मन्त्रका सवा लाख अनुष्ठान एकमात्र श्रेयस्कर है । इससे इस अकिंचनको सही एवं शुद्ध-ज्ञान उपलब्ध हुआ है।

सच्ची श्रद्धा, निष्ठा एवं समर्पणके साथ माकी शरण जानेपर संसारकी कोई भी विपदा क्यों न हो, अवश्य दूर होती है ।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

—रामनिरीक्षण मिश्र उर्फ मालाबाबा, पत्रालय—कन्हौली, वाया दोन (सारन)

(६)

जीवन-परिवर्तन

सारे शहरमें गुंडेके नामसे प्रसिद्ध था । शराब और जूआ, दोनों हाथोंकी तरह इसके साथ जुड़े हुए थे । परंतु जोंककी तरह अपना काम पूरा करके, दौलतकी पूर्वजोंकी संचित पूँजीको चूसकर दोनोंने अपना रास्ता पकड़ा ।

जुएके दौरानमें उसने अपना सर्वस्व खो दिया और तभीसे उसके व्यसन भी चले गये । हताश होकर दौलतने

पत्नीके गहने बेचकर एक टैक्सी खरीदी और उसे भाड़ेपर चलाने लगा। पर ऐसे बदनाम आदमीकी टैक्सीपर सवार होना शायद ही कोई पसंद करता। ठोकरें लगनेपर दौलतकी आँखें खुल गयीं। पर अब क्या हो ?

एक दिन एक बाहर गाँवके व्यापारीने उसकी टैक्सी किरायेपर ली। उस व्यापारीकी जेबमेंसे दस हजारके नोटोंका एक पैकेट खिसककर टैक्सीमें गिर गया। शामको जब वह टैक्सीको धोने नदीपर ले गया, तब उसने पैकेट देखा। इधर घबराया हुआ व्यापारी हाहाकार करने लगा। इसी बीच पैकेट लेकर दौलत वहाँ जा पहुँचा। व्यापारीके शरीरमें मानो प्राण आ गये। उन्होंने पाँच सौ रुपये दौलतको देने चाहे, पर उसने केवल मुसकराकर सिर हिला दिया और एक पैसा भी लेनेके लिये नाहीं कर दी।

दौलतकी ईमानदारीकी यह बात सर्वत्र फैल गयी। अब, रुपयोंकी वसूली करने, घूमने-फिरने तथा अन्यान्य प्रसङ्गोंके लिये व्यापारी उसीको बुलाने लगे। एक दिनका गुंडा आज एक बड़े ईमानदारके रूपमें विख्यात हो गया।

लड़कपनमें किये हुए थोड़े अभ्यासकी सहायतासे उसने सरल धर्मग्रन्थोंका पढ़ना शुरू किया और धीरे-धीरे वह संतोंके प्रवचन सुननेका भी रसिक बन गया। उसमें दया, करुणा आदि गुण जग उठे। अपनी आमदनीका अधिकांश भाग वह गरीबोंकी सेवामें खर्च करने लगा। कुछ बच्चोंको फीस, पुस्तकें तथा कपड़े दिलवाकर उन्हें पढ़ाने लगा। कितने ही गरीब उसके पाससे भोजन प्राप्तकर संतोष पाने लगे। उसकी इतनी अच्छी छाप पड़ी कि कोई भी व्यापारी उसे मुँहमाँगा धन देनेको तैयार ही रहता।

अन्तमें एक दिन उसने गेरुआ धारण कर लिये। अब भी वह कहता है कि मुझको उस समय कोई खयाल ही नहीं था कि मैं किस लिये संन्यासी हो रहा हूँ और आज भी वह इस प्रश्नके लिये अनुत्तर है।

वह रास्तोंमें पेड़ लगाने लगा और उनमें नियमित जल देनेका कार्यक्रम बनाया।

रास्ते कहीं बह गये हों या उनमें गड्ढे पड़ गये हों तो वह स्वयं उनको भरकर बराबर कर देता। गायोंके चरनेकी गोचरभूमिके पास जलका कोई साधन नहीं था, यह देखकर गाँवके लोगोंकी सहायतासे एक अच्छी बड़ी तलैया बनवा दी, जो आज भी बारहों महीने जलसे भरी रहती है (अखण्ड आनन्द) —रणजीतसिंह जसुभया झाला

(७)

कुछ रोगोंके अनुभूत प्रयोग

१

दमाकी अनुभूत दवा

श्वास-कष्ट अधिक होनेपर इसका प्रयोग करना चाहिये। उस समय प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होगा। एक काँसेकी कटोरीमें ५ (पाँच) तोले गौका घृत खूब गरम कर लिया जाय और दूसरे एक बर्तनमें २½ (ढाई) तोले अदरखका रस गरम कर लें। फिर उस गरम अदरखके रसको गरम घृतमें डालकर काँसेकी थालीसे ढक दें। कल-कल शब्द बंद होनेपर वह गो-घृत २ (दो) तोले, आधा पाव गरम दूधके साथ पी लें। उसी समय गाढ़ा-गाढ़ा कफ निकलकर श्वास-कष्ट दूर हो जायगा। पंद्रह दिनके सेवनसे रोग पूर्णरूपसे नष्ट हो जाता है।

२

खाँसीपर सफल प्रयोग

(१) जंगली पीपलके पत्ते और छाल, अडूसाके पत्ते और छाल, कंटकारी, तेजपत्ता और मुलहठी—ये सातों चीजें प्रत्येक पाँच आनेभर लेकर जरा-सा कूटकर एक पाव जलके साथ अग्निकी मंदी आँचपर रख दें। एक छटाक जल रहनेपर छानकर गरम-गरम पी लिया जाय। दो-तीन दिनोंमें ही खाँसी मिट जायगी।

(२) बच्चोंकी खाँसी—एक नग बड़ी मुनक्काका बीज निकालकर उसमें १ रत्ती काकड़ासिंगी और एक रत्ती दालचीनीका चूर्ण भरकर बच्चेको खिला दें। खाँसी मिट जायगी।

३

स्वप्नदोषका सहज इलाज

बकरीके दूधमें सोरा, आँवला और माजूफल पीसकर नाभिके चारों ओर लेप करके सोनेसे स्वप्नदोष नहीं होता है। कुछ दिन लगातार इसका प्रयोग करना चाहिये।

४

श्वेतप्रदरका अनुभूत प्रयोग

यह २५ वर्षका अनुभूत प्रयोग है। श्वेतप्रदर ३, ४ दिनोंमें ही रुक जाता है। ४० दिनके प्रयोगसे पूर्ण लाभ अवश्य होता है। यह महारोग प्रायः ९० प्रतिशत स्त्रियोंके देखनेमें आया है। प्रयोग यह है—पसारीके यहाँसे, संगजराहत नामक सफेद पत्थर होता है, इसे सफेद सुरमा भी कहते हैं, ले आवें। फिर उसे जलसे धोकर साफ कर

लें और कपड़ेसे पोंछकर साफ हिमामदस्तेमें खूब कूटकर बारीक चलनीसे छान लें। इस पिसाईमें ही मेहनत है। मैदा-जैसा होनेपर दवा तैयार है। इसको शीशीमें भरकर रख लें। इसमेंसे एक माशा दवा, छः माशा शहदके साथ मिलाकर चाट लें। प्रातः शौच-स्नानसे निवृत्त हो खाली पेट और शामको पाँच बजे। सवा सौ ग्राम काफी है। खटाई, तैल, लालमिरच, गुड़ और चायका सेवन छोड़ दें। अवश्य लाभ होगा।

किसी भी जटिल स्त्रीरोगके विषयमें जवाबीपत्र भेजकर पूछ सकते हैं। मैं ऐसा ही छोटा प्रयोग लिख दूँगी।

५

आधाशीशी (अर्धावभेदक) पर सफल प्रयोग

प्रातःकाल सूर्योदयसे एक घंटे पूर्व मावेके एक पेड़ेमें एक चनेके दानेके बराबर देशी (डलीका) कपूर डालकर उसे चबाकर खा जायँ। उसीके साथ छटाँक–आधी छटाँक मावाका पेड़ा या मावा और खा लें। पानी न पीयें। एक ही मात्राके सेवनसे लाभ होता है, किसी-किसीको दो मात्रा खानी पड़ती है। तीसरी मात्रा आजतक किसीको नहीं दी गयी।

—श्रीसुनीति शर्मा, वैद्या।
दैव औषधालय, नयी बस्ती पो० बिजनौर (उ० प्र०)

६

मोतियाबिन्द और मधुमेहपर प्रयोग

'कल्याण' गत आठवें अङ्कमें मोतियाबिन्दका अनुभूत प्रयोग निकला है, वह बिल्कुल ठीक है। मेरे मतानुसार अँगुलीसे ही एक-एक बार दोनों आँखोंमें थूक लगानेसे भी लाभ होगा। मोतियाबिन्दका एक अनुभूत प्रयोग यह है—

छोटी मक्खीका असली शहद और हरे आँवलोंका रस बराबर वजनमें लेकर मिलाकर एक साफ शीशीमें रख लें और रातको सोते समय आँखोंमें लगा लें। केवल शहद लगाना भी लाभप्रद है।

७

मधुमेह (डायबिटीज) का अनुभूत प्रयोग

बबूलकी, जिसे 'कीकर' भी कहते हैं, २॥ (ढाई) तोले छाल डेढ़ पाव जलमें पकाकर जब एक पाव जल रह जाय, तब उतारकर छानकर प्रतिदिन पी लें। चीनीके कारण हुए बदनके फोड़े, घाव तथा कफ आदि भी इससे ठीक हो जायँगे।

(कीकरकी पत्ती मुँहमें चबाकर जिसको बिच्छू काटा हो, उसके दूसरी तरफवाले कानमें फूँक मारनेसे बिच्छूका जहर उतर जाता है।)

—डा० त्रिभुवननाथ शर्मा।
१४ जी० टी० रोड, गाजियाबाद (उ० प्र०)

८

कमल-पीलिया (Jaundice) और स्वप्नदोष (Spermatorrhoea) का अचूक इलाज

दोनों रोगोंके लिये एक ही दवा है। केवल प्रयोगमें अन्तर है। कितना ही कष्ट हो, प्रायः तीन दिनमें ठीक हो जाता है। दवाका नाम है—'भंगभस्म' अथवा 'कलईका कुश्ता।' यह प्रायः पंसारियोंके यहाँ मिल जाता है। कोई-कोई इसे 'बंगभस्म' भी कह देते हैं। पीलिया रोगमें एक रत्ती भंगभस्म लेकर एक छोटी चम्मच दूधकी मलाईपर डालकर प्रातःकाल खा लें और दुपहरके बाद तीन-चार बजे थोड़ी-सी ईसबगोलकी भूसी फाँककर ऊपर एक गिलास नीबूका शर्बत पी लें। दो-तीन दिनोंमें ही पीलिया दूर हो जायगा। इसका प्रयोग केवल तीन दिनका है।

स्वप्नदोषकी निवृत्तिके लिये प्रातःकाल एक रत्ती भंगभस्म, एक छोटी चम्मच मक्खनपर डालकर तीन दिन ले लें। विद्यार्थियोंमें यह रोग बहुत फैला है, अतएव वे इसका विशेषरूपसे सेवन करें। पर दवा लाभ तभी करेगी, जब आप अपनेको बुरी संगति तथा बुरे विचारोंसे दूर रक्खेंगे। रात्रिको सोनेसे पूर्व लघुशंका करके, ठंडे जलसे हाथ-पैर धोकर, एक-दो घूँट ठंडा पानी पीकर मन-ही-मन 'राम राम राम राम राम राम राम'—नामका जाप करते हुए एवं रोगनिवारणार्थ सच्चे हृदयसे प्रभुसे प्रार्थना करते हुए निद्राका आवाहन करें।

जिन लोगोंको शुद्ध 'भंगभस्म' मिलनेमें संदेह हो, वे मुझे पत्र लिखें, मैं बिना मूल्य भेज दूँगा।

—मनोहरलाल अग्रवाल, (जे. पी.)
'Ramsharanam' (रामशरणम्) a 18th Road (१८ वीं सड़क), Chembur (चेम्बूर), Bombay 71 (बम्बई ७१)

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको सूचना और निवेदन

(१) यह 'कल्याण'के ४३ वें वर्षका ग्यारहवाँ अङ्क है । बारहवाँ अङ्क निकल जानेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा । आगामी विशेषाङ्क 'अग्निपुराणाङ्क' होगा । इसी विशेषाङ्कसे ४४ वाँ वर्ष आरम्भ होगा । 'अग्निपुराण'में इतने उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक विषय हैं कि जिनका अध्ययन कर, तदनुसार साधन करनेसे मनुष्य अपने जीवनमें सर्वाङ्गीण प्रगति कर सकता है । नाना प्रकारकी दुर्लभ विद्याओंका इस पुराणमें वर्णन है । इस अङ्कमें स्थान बचनेपर शायद कुछ बड़े ही उपयोगी लेख भी रहेंगे । सुन्दर रंगीन तथा सादे चित्र भी रहेंगे । इस अङ्कसे सबको लाभ उठाना चाहिये ।

(२) 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य पूर्ववत् ९.०० रुपया ही रक्खा गया है, जो वास्तवमें बहुत कम है । अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये । मनीआर्डर-फार्म पिछले 'अङ्क'के साथ भेजा जा चुका है । रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें । ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें । नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें ।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है । इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी०. द्वारा जा सकती है । यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय । दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें । सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें । इससे भगवान्‌की सेवा होगी ।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े ।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल 'विशेषाङ्क' और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) हैं ।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द 'अङ्क' देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है । यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है ।

(७) गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) का विभाग 'कल्याण' विभागसे अलग है । अतएव 'कल्याण'के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) के लिये रुपये न भेजें । उनके लिये अलग रुपये भेजें । चेक या ड्राफ्ट तो सभी 'गीताप्रेस'के नामसे भेजने चाहिये । गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १.०० रुपया बैंक-चार्ज जोड़कर भेजना चाहिये । पुस्तकोंके आर्डर तथा रुपये व्यवस्थापक 'गीताप्रेस'के नामसे तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रुपये व्यवस्थापक 'कल्याण-कल्पतरु'के नामसे भेजने चाहिये ।

व्यवस्थापक—'कल्याण' गीताप्रेस (गोरखपुर)

क्या मत करो और क्या करो

ऐसा कोई काम मत करो, जिससे दूसरे किसीका अपमान होता हो और ऐसा तो कभी विचार भी मत करो, जिससे दूसरोंके हितकी हानि होती हो। दूसरोंको मान दो, स्वयं मान मत चाहो। दूसरोंके अहितमें अपना हित कभी मत समझो और यथासाध्य सबका हित करो, उसीमें अपना हित समझो। ऐसा कुछ भी मत करो, जिससे अपना मिथ्या अहंकार बढ़ता हो और कर्त्तव्यकी विस्मृति होती हो। ऐसा कुछ भी कभी मत करो, जिससे दूसरोंका न्याय्य अधिकार छिनता हो। दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करो और अपने कर्त्तव्यका पालन करो।